

ऋषभ

आर

महावार

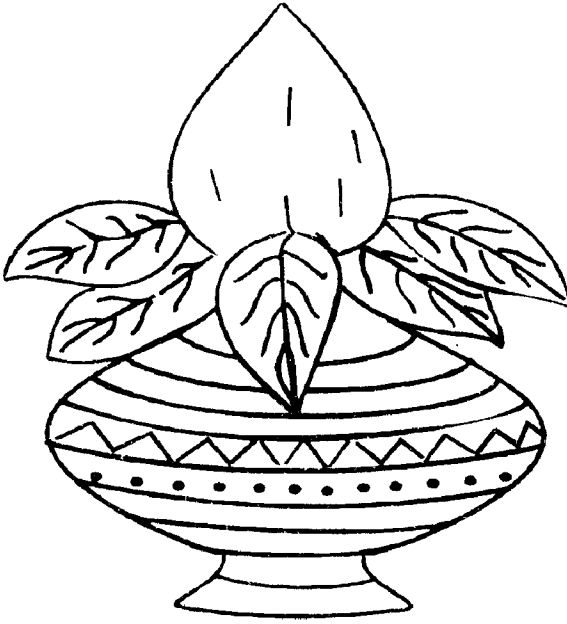
आचार्य महाप्रज्ञ

# ऋषभ और महावीर

जैन विश्व भारती प्रकाशन

# ऋषभ और महावीर

आचार्य महाप्रज्ञ



जैन विश्व भारती प्रकाशन

मुख्य संपादक : मुनि दुलहराज

संपादक : मुनि धनंजय

प्रकाशक : जैन विश्व भारती,  
लाडनू- ३४१३०६ (राज.)

© जैन विश्व भारती, लाडनू

ISBN - 81 - 7195-069-8

संस्करण : 2002

मूल्य : ४० रु/-

मुद्रक : कला भारती,  
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

## प्रस्तुति

दो ध्रुव । एक अर्हत् परम्परा का दूसरा श्रमण परम्परा का । दोनों में बहुत दूरी फिर भी दोनों परस्पर संबद्ध । ऋषभ अर्हत् हैं और महावीर श्रमण हैं । श्रमण परम्परा का आदि-बिन्दु अर्हत् है उसका चरम बिंदु श्रमण । ऋषभ ने समाज व्यवस्था की संरचना की फिर धर्मचक्र का प्रवर्तन, प्रवृत्ति से निवृत्ति में प्रवेश । महावीर प्रारम्भ से ही संयम के अभिमुख रहे हैं । दोनों का बहुत विशाल है अवदान । लघु पुस्तिका में उनका संक्षिप्त लेखा-जोखा । पाठक सरलता से उन तक पहुंच सके, आज के संदर्भ में उनसे साक्षात्कार कर सके, बस इतनी सी छोटी यात्रा । 'जैनधर्म अर्हत् और अर्हताएं' पुस्तक का पहला-दूसरा अध्याय, शेष में अशेष का समावेश ।

मारवाड़ जंक्शन  
पाली (राजस्थान)  
१४ जून, ९०

आचार्य महाप्रज्ञ



## अनुक्रम

१. कालचक्र और कुलकर	९
२. ऋषभ का अवतरण	१६
३. राजतन्त्र का सूत्रपात	२४
४. ऋषभ और समाज व्यवस्था	३२
५. धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन	४१
६. जागो ! क्यों नहीं जाग रहे हो ?	५०
७. भरत और बाहुबली	५७
८. निर्वाणवाद के प्रवक्ता : भागवान् महावीर (१)	६७
९. निर्वाणवाद के प्रवक्ता : भगवान् महावीर (२)	७२
१०. मृत्यु का दर्शन : समाधिमरण	७६
११. वर्धमान : जागरूकचर्या	८५
१२. वर्धमान : निद्रा संयम	९२
१३. वर्धमान : परीषहों के घेरे में	९८
१४. संकल्प की धुनी पर तपा गया तप	१०५
१५. वर्धमान : प्रेक्षा के प्रयोग	११३





## कालचक्र और कुलकर

बहुत प्राचीनकाल से कुछ जिज्ञासाएं मनुष्य के मस्तिष्क में उभरती रही हैं, प्रश्न पूछे जाते रहे हैं और समाधान खोजा जाता रहा है। प्रश्न है—यह विश्व किसने बनाया? यह विश्व किससे बना? कब बना? कैसे बना? मूल तत्त्व क्या है? वह तत्त्व क्या है, जो निरन्तर परिवर्तन में अपरिवर्तित रहता है? यह पृथ्वी कब से है? यह आकाश कब से है? यह सौरमंडल कब से है? यह प्राणीजगत् कब से है? यह मनुष्य कब से है? ये प्रश्न मानव मन में उभरते रहे हैं। मनुष्य अपनी बुद्धि के द्वारा और अपनी अन्तर्दृष्टि के द्वारा इन प्रश्नों का समाधान खोजता रहा है। जैन दर्शन ने भी इनका समाधान खोजा। एक साथ खोजा या धीमे-धीमे खोजा, यह विचार इतिहास का विषय है किन्तु जैन दर्शन में इनका समाधान खोजा गया है।

### संदर्भ विश्व का

- पहला प्रश्न है—यह विश्व किसने बनाया?  
जैन दर्शन ने इसका समाधान दिया—विश्व को बनाने वाला कोई नहीं है।
- दूसरा प्रश्न है—यह विश्व किससे बना?  
जीव और अजीव—ये दो तत्त्व हैं। इन दो तत्त्वों से यह विश्व बना है।
- तीसरा प्रश्न है—यह विश्व कब बना?

इसका कोई अता-पता नहीं है। इसका आदि बिन्दु निकाला नहीं जा सकता। इसलिए नहीं निकाला जा सकता कि इस विश्व में जितने तत्त्व पहले थे, उतने ही हैं, उतने ही रहेंगे। जीव और अजीव में से एक भी तत्त्व, एक भी अणु न नया जन्म लेता है और न पुराना नष्ट होता है। जितना था, उतना है और उतना ही रहेगा। अतीत में जितने पदार्थ थे, वर्तमान में भी वे हैं और अनन्त भविष्य में भी वे पदार्थ बराबर बने रहेंगे। वे न कम होंगे न अधिक। इसलिए विश्व कब बना, इस प्रश्न का कोई उत्तर दर्शन जगत् के पास नहीं है और इसका आदि बिन्दु खोजा भी नहीं जा सकता।

## मूल द्रव्य दो हैं

- चौथा प्रश्न है—विश्व कैसे बना ?

जीव और अजीव का संयोग होता रहता है और उस संयोग ने इस सृष्टि का निर्माण किया है। प्रश्न होता है—दूध कैसे बना ? गाय ने घास खाई और दूध बन गया। जितना विकास है, वह सारा यौगिक है। उसमें जीव और अजीव—इन दो तत्त्वों का योग है। इन दो का योग मिलता रहता है और वह गुणित होता चला जाता है। दो से चार, चार से आठ और आठ से सोलह—इस प्रकार वह गुणित होता चला गया।

- पांचवां प्रश्न है—मूल तत्त्व क्या है ?

जीव और अजीव—ये दो मूल तत्त्व हैं।

जगत् का जितना विस्तार है, वह जीव और अजीव के संयोग से हुआ है। उस विस्तार की शक्ति का नाम है व्यंजन पर्याय। पर्याय दो प्रकार का होता है—स्वभाव पर्याय और व्यंजन पर्याय। प्रत्येक पदार्थ में जो अपना-अपना परिणमन होता रहता है, वह है स्वभाव पर्याय और जो दो के योग से बनता है और प्रगट होता है, वह है व्यंजन पर्याय। दो का योग मिला, हाईड्रोजन-आक्सीजन मिला, पानी बन गया। पानी कोई मूल तत्त्व नहीं है। पानी यौगिक है। जितने द्रव्य यौगिक हैं, वे संयोग से मिलते हैं और बनते चले जाते हैं।

## विस्तार यौगिक है

हमारे जगत् का जो विस्तार है, वह यौगिक विस्तार है। मूल तत्त्व बहुत सिमटे हुए हैं। किन्तु इनका विस्तार इतना हो गया कि हमें नाना द्रव्य दिखाई दे रहे हैं। प्रश्न होता है—मकान क्या है ? वह कोई मूल द्रव्य नहीं है। ईट, पत्थर, सीमेन्ट, लोहा—इनका योग मिला और मकान खड़ा हो गया। यह मिट्टी क्या है ? यह पृथ्वी क्या है ? कुछ प्राणी और कुछ पुद्गल मिले, मिट्टी का निर्माण हो गया। यह जल क्या है ? कुछ प्राणी और कुछ पुद्गल के स्कन्ध मिले, जल का निर्माण हो गया। यह अग्नि क्या है ? कुछ प्राणी और कुछ परमाणु स्कन्ध मिले, अग्नि का निर्माण हो गया। हवा क्या है ? कुछ प्राणी और कुछ पुद्गलों का योग है। यह वनस्पति-जगत् क्या है ? इसका उत्तर भी यही है। कुछ जीव और कुछ पुद्गल मिले, इतना बड़ा वनस्पति जगत् बन गया। यह त्रस जगत्—कीड़े-मकोड़ों से लेकर मनुष्य तक क्या है ? यह भी यौगिक ही है ? जीव मिला और पुद्गल मिला, एक कीड़ा बन गया, एक पक्षी बन गया, एक पशु बन गया और एक आदमी बन गया। मूल द्रव्य कोई नहीं

है, सब यौगिक है। कहना चाहिए—जितना दिखाई दे रहा है जो दृश्य जगत् है, वह सारा का सारा जीव और पुद्गल का यौगिक स्वरूप है। न कोई शुद्ध जीव है और न कोई शुद्ध पुद्गल। यदि पुद्गल है तो वह जीव के द्वारा छोड़ा हुआ पुद्गल है। सूक्ष्म पुद्गल हमें दिखाई नहीं देता।

### विश्व रचना के मूल तत्त्व

कुछ दार्शनिकों ने माना—विश्व की रचना का मूल तत्त्व है—पंचभूत। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन पांच महाभूतों से सृष्टि का निर्माण हुआ है। जैन दर्शन ने पांच भूतों को स्वीकृति नहीं दी। उसके अनुसार जीव और अजीव—इन दो के योग से सृष्टि का निर्माण हुआ है। इस योग में पृथ्वी भी है, पानी भी है, अग्नि भी है और वायु भी है। किन्तु आकाश अलग पड़ जाता है। आकाश एक स्वतंत्र द्रव्य है। वह इन चारों के साथ नहीं आता, वह यौगिक नहीं है।

सारा संसार पुद्गलों और जीवों के योग से बनता है। दोनों का योग मिला और व्यंजन पर्याय घटित हो गया। व्यंजन पर्याय यानी प्रगट होने वाला पर्याय। गाय ने घास खाई और दूध बन गया, यह व्यंजन पर्याय है। प्रश्न हुआ—दूध कहां से आया? क्या दूध का अस्तित्व गाय में है। क्या दूध का अस्तित्व घास में है? अगर गाय में है तो घास कभी दूध नहीं देगी, उसका अस्तित्व न गाय में है, न घास में है किन्तु दोनों के योग में है। गाय और घास—दोनों का योग मिला और एक नया पर्याय बन गया। दूध हमारे सामने प्रस्तुत हो गया। ऐसे नाना प्रकार के योग बनते हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती। असंख्य योग बनते हैं और असंख्य पदार्थ बनते चले जाते हैं।

### प्रश्न बदलाव का

● छठा प्रश्न है—क्या यह यौगिक जगत् बदलता ही रहता है।

कहा गया—ऐसा नहीं है। निरन्तर परिवर्तन के बीच भी एक तत्त्व ऐसा है, जो अपरिवर्तित रहता है। जीव और अजीव—दोनों में परिवर्तन का चक्र चल रहा है। किन्तु दोनों के बदलाव में एक न बदलने वाला तत्त्व भी बैठा है। जैन दर्शन में तीन तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। पदार्थ उत्पन्न होता है, विनष्ट होता है और ध्रुव भी रहता है। एक ध्रुव तत्त्व ऐसा है, जो उत्पाद और व्यय के बीच बैठा है। वैदिक दर्शन ने सृष्टि का उत्पाद और लय माना। सृष्टि की उत्पत्ति होती है और उसका लय होता है मूल कारण में। मूल कारण है ईश्वर

या ब्रह्म । वह स्थायी रहता है । अगर हम कल्पना को निकट लाएं तो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तथा ईश्वर, लय या उत्पत्ति को एक दृष्टि से देख सकते हैं ।

### पृथ्वी का अस्तित्व

● सातवां प्रश्न है—यह पृथ्वी कब बनी है ?

जब से जीव और अजीव का अस्तित्व है तब से पृथ्वी का अस्तित्व है । हमारा सौरमण्डल कितना बड़ा है ! हमारी नीहारिकाएं कितनी बड़ी हैं ! जो सौरमंडल दिखाई दे रहा है, जो नीहारिकाएं दिखाई दे रही हैं ऐसी असंख्य-असंख्य नीहारिकाएं और असंख्य सौरमंडल इस जगत् में विद्यमान हैं । विज्ञान भी इस तथ्य को स्वीकृति दे रहा है । एक ग्रह से दूसरे ग्रह के बीच की दूरी दो करोड़ अरब या खरब प्रकाश वर्ष है । एक प्रकाश वर्ष कितना बड़ा होता है ! इतना विराट् है हमारा यह ब्रह्माण्ड, जगत् या विश्व । इसमें निरन्तर परिवर्तन होता रहता है, पृथ्वी भी बदलती रहती है । आकाश अटल रहता है, वह कभी बनता या बिगड़ता नहीं है । वह अपने स्वभाव में बदलता है किन्तु बाहर में नहीं बदलता ।

### प्राणी जगत् भी बदलता है

प्राणी जगत् भी बदलता रहता है । एक समय इस पृथ्वी पर जिन प्राणियों का साम्राज्य था, वह समाप्त हो गया । दो करोड़ वर्ष, चार करोड़ वर्ष पहले जिन प्राणियों का साम्राज्य था, आज उन प्राणियों का अस्तित्व लगभग समाप्त हो गया । दूसरे प्राणी आ गए । प्राणियों की जातियां और प्रजातियां बदलती रहती हैं । प्राणियों का अस्तित्व भी बदलता रहता है । आकार भी एक समान नहीं रहता । आज आदमी का जो आकार है, क्या पहले भी वही आकार था ? कहना कठिन है । वह बहुत बदला है, उसमें इतना परिवर्तन आया है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते । आगम साहित्य में ऐसे-ऐसे प्राणियों, मनुष्यों का उल्लेख है, जिनका मुंह घोड़े जैसा होता था और जिनके पूंछ भी होती थी । आज यह माना जाता है—बंदर के पूंछ होती है पर छप्पन अन्तर्द्वीप के मनुष्यों का जो वर्णन उपलब्ध होता है, वह बहुत विचित्र है । इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि मनुष्य सदा इसी रूप में था । उसके आकार-प्रकार बदले हैं, रूप बदले हैं । वर्ण, गंध, रस और स्पर्श भी बदलते रहे हैं । इस स्थिति में एक जैसा होने की बात कहना कठिन है । प्राणी जगत् भी बदला है और मनुष्य जगत् भी बदला है ।

## परिवर्तन का आधार

जबसे इस पृथ्वी का अस्तित्व है, जीव और पुद्गल का संयोग है, तब से प्राणी जगत् का अस्तित्व है, मनुष्य का अस्तित्व है। उसमें परिवर्तन का चक्र चलता रहता है। जैन आचार्यों ने परिवर्तन को अलग-अलग भागों में बांटा। परिवर्तन का एक आधार बना—भौगोलिकता। पृथ्वी पर क्षेत्रजन्य परिवर्तन का एक आधार है—कालचक्र। हम जिस पृथ्वी पर जी रहे हैं, उस पृथ्वी पर कालचक्र का परिवर्तन होता है। कालचक्र चलता है और कालचक्र के आधार पर परिवर्तन चलता है। कालचक्र को बारह भागों में बांटा गया है। इन बारह भागों में छह भागों का नाम रखा गया—अवसर्पिणी काल और छह भागों का नाम रखा गया—उत्सर्पिणी काल। एक काल ऐसा आता है जिसमें धीरे-धीरे सब वस्तुओं का हास होता चला जाता है। उस काल को अवसर्पिणी काल कहा गया। एक काल ऐसा आता है, जिसमें सब वस्तुओं का विकास होता चला जाता है, उसे उत्सर्पिणी काल कहा गया। अभी हम जिस कालखंड में जी रहे हैं, उसका नाम है अवसर्पिणी काल।

## यौगलिक युग

इस कालचक्र के सिद्धांत के अनुसार पहला खंड बीता, दूसरा बीता और तीसरा बीता। जब तीसरा कालखंड बीत रहा था, तीसरे कालखंड के तीसरे भाग का भी थोड़ा भाग बच रहा था, उस समय इस विश्व की व्यवस्था ने एक मोड़ लिया, मनुष्य का इतिहास बदला। एक नया मोड़ आया मनुष्य जाति के इतिहास में। इस विश्व को कुलकरों ने प्रभावित किया। पहले यौगलिक युग था। उसमें समाज जैसी व्यवस्था नहीं थी। एक जोड़ा जन्म लेता, वह सहज संयम का जीवन जीता और अन्तिम समय में एक जोड़े को जन्म देकर विदा हो जाता। न कोई व्यापार था, न कोई व्यवसाय था, न कोई राज्य-शासन था और न कोई व्यवस्था थी। एक प्रकार का पूरा जंगली जीवन था। उसे जीने वाले मनुष्य यौगलिक मनुष्य कहलाते थे। वे सहज धार्मिक थे। न कोई धर्म का प्रवर्तन था और न कोई धर्म का उपदेश देने वाला था। उनका जीवन शांत था, क्रोध, मान, माया और लोभ सहज शांत थे। न झगड़ा, न ईर्ष्या और न चुगली, कुछ भी नहीं। वे शांतिपूर्ण जीवन सम्पन्न कर मरने के बाद स्वर्ग में जाते। उस युग में सहज शांत जीवन की सारी प्रणाली चल रही थी। किन्तु जब तीसरा कालखंड अन्तिम क्षणों में आया, युग में परिवर्तन आने लगा, संतति का विकास होने लगा। जहां संतति बढ़ी, आबादी बढ़ी, वहां समस्याएं भी

बढ़ने लगीं। जनसंख्या के साथ-साथ समस्याएं बढ़ती हैं। यह एक ध्रुव सिद्धान्त हो सकता है—जितना परिग्रह सीमित होगा, उतना ही व्यक्ति पवित्र, सुखी और शान्त होगा। परिग्रह बढ़ेगा तो झड़ंत भी बढ़ेंगे, संघर्ष भी बढ़ेंगे, ईर्ष्या बढ़ेगी, सब कुछ बढ़ेगा। समाज को कभी भी एक रूप नहीं बनाया जा सकता। ऐसा होना संभव भी नहीं है। जहां समाज है, वहां ये सारी बातें आएंगी। समाज में लोभ भी बढ़ेगा और तृष्णा भी बढ़ेगी।

जब आकांक्षा बढ़ती है, तृष्णा भी बढ़ जाती है, लोभ भी बढ़ जाता है, सब कुछ बढ़ जाता है।

### नेतृत्व का बीजारोपण

तीसरे युग के अन्तिम क्षणों में आकांक्षा विस्तार पाने लगी। यौगलिक युग समाप्ति की ओर था। नए युग का सूत्रपात हो गया। उस युग के संधि-काल में, संक्रान्ति-काल में स्थितियां बदलनी शुरू हो गईं। जो भूमि खूब मिठास दे रही थी, वह मिठास कम होने लगा। आज की चीनी से भी ज्यादा मिठास उस समय की मिट्टी में थी। पदार्थों की शक्ति बहुत ज्यादा थी। वे लोग एक चने की दाल जितना खा लेते तो दो दिन तक खाने की जरूरत नहीं होती। उन्हें रोज खाने की जरूरत नहीं थी। तीसरे आरे—कालखंड में जैसे निरन्तर वर्षोत्प चला रहा था। कोई भी रोज नहीं खाता। सब एक-एक दिन के अन्तराल से खाते। शक्तियां भी कम होने लगीं। भूमि का मिठास भी कम होने लगा। काल की स्निग्धता भी कम होने लगी। मस्तिष्क में रुखापान आने लगा और साथ-साथ में अपराध भी जन्म लेने लगे। कल्पवृक्ष से खाने की पूर्ति होती थी, वे भी कम देने लगे। संतति बढ़ने लगी, पैदावार कम होने लगी। छीना-झपटी और चोरियां शुरू हो गईं। लोग संत्रस्त हो उठे। उन्होंने सोचा—ऐसे तो काम नहीं चलेगा। कुछ लोगों ने मिलकर अपना नेता चुनना शुरू किया। कुल बने, कुलों के मुखिया बने। कुलकर की व्यवस्था का यह आदि बिन्दु है। समाज व्यवस्था का काम एक मुखिया को सौंप दिया गया। छोटे-छोटे कुल बनाए गए। कुलकरों ने अपनी व्यवस्था को दृढ़ता से लागू किया, छीना-झपटी को रोकना शुरू किया, अपना अधिकार जमाना शुरू कर दिया। उन्होंने व्यवस्था दी—अमुक पदार्थ या क्षेत्र हमारे अधिकार में है, यहां दूसरा कोई आ नहीं सकेगा और यहां से कुछ भी नहीं ले सकेगा। स्वामित्व का बीजारोपण हो गया। व्यक्तिगत स्वामित्व, कुल, कुल की व्यवस्था—इन सबका जन्म हो गया। अनेक कुलकर बने।

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार पन्द्रह कुलकर हुए। आवश्यक निर्युक्ति और स्थानांग सूत्र के अनुसार सात कुलकर हुए। उसमें विमलवाहन को पहला कुलकर माना गया है किन्तु जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार विमलवाहन सातवें कुलकर होते हैं। कुलकरों ने कुल की व्यवस्था संभाल ली और एक प्रकार से नेतृत्व का बीजारोपण हो गया।

### कुलकर परम्परा : दो अभिमत

यौगलिक व्यवस्था सब स्वशासित थे। दूसरे का शासन नहीं था। अपना शासन अपने द्वारा होता था। पूरा लोकतंत्र था। कोई शास्ता नहीं, कोई शासित नहीं। अपने आप अपना जीवन चलाते और अपने आप में रहते। जब कुलकर की व्यवस्था का सूत्रपात हुआ तब एक शासक, एक व्यवस्था और एक नेतृत्व का बीजारोपण हो गया। कुलकरों ने अपने अधिकार का विस्तार किया। जो व्यक्ति गलती करता, पदार्थों को इधर-उधर करता, उसके नियमन के लिए सोचना भी शुरू कर दिया। जब गलतियाँ होनी शुरू हो गईं, अपराध होने शुरू हो गए तब कुलकरों ने सोचा—कुछ उपाय करना चाहिए। चिंतन आगे चला, एक नया मोड़ आया। नाभि सातवें कुलकर माने जाते हैं। जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति के अनुसार नाभि चौदहवें कुलकर और ऋषभ पन्द्रहवें कुलकर हुए। ऋषभ को भी कुलकर मान लिया गया। नाभि अन्तिम कुलकर हैं। ऋषभ के दो रूप बन जाते हैं—ऋषभ कुलकर भी बने हैं और ऋषभ राजा भी बने हैं। एक भाषा में सोचें तो नाभि चौदहवें हैं या सातवें हैं। किन्तु अन्तिम कुलकर हैं। उन्होंने कुल की व्यवस्था को ठीक जमा दिया। उनके सामने भी कठिनाइयाँ आने लगीं। जैसे-जैसे काल का प्रभाव बढ़ता चला गया, काल की स्निग्धता कम होती चली गई, दिमाग का टंडापन कम होता चला गया, दिमाग और रक्त की उष्मा बढ़ती चली गई वैसे-वैसे अपराध बढ़ते गए। यह बहुत मननीय बात है—जब दिमाग टंडा रहता है, रक्त टंडा रहता है तब अपराध जागते नहीं हैं। अपराध तब जागते हैं जब रक्त की गर्मी बढ़ जाती है, दिमाग भी गर्म हो जाता है। नाभि के युग में अपराध में वृद्धि शुरू हो गई। एक प्रश्न प्रस्तुत हुआ—अब क्या किया जाए? इस विषय पर चिंतन-मंथन चला, अपराध की रोकथाम करने की दिशा में एक कदम उठ गया।



## ऋषभ का अवतरण

समुद्र में हिमखंड तैरते रहते हैं। उसका थोड़ा-सा सिरा ऊपर होता है, बर्फ का पहाड़ भीतर चलता है। देखने वाला सिरे को देखता है, भीतर नहीं देखता। प्रत्येक व्यक्ति इस विश्व के महासमुद्र में हिमखण्ड जैसा है। हमें ऊपर का सिरा दिखाई देता है पीछे छिपा सिरा दिखाई नहीं देता। हम केवल वर्तमान को जानते हैं, अतीत को नहीं जानते। अतीत को जाने बिना वर्तमान को ठीक से नहीं जाना जा सकता। वर्तमान मात्र अभिव्यक्ति है। जो प्रकट होता है, उसके पीछे क्या है, कितना है, इस बात को जानना बहुत जरूरी है। अध्यात्म ने इस बात को जाना। उसने व्यक्ति को मात्र हिमखंड का सिरा नहीं माना, पूरा हिमखंड माना।

### वर्तमान : अभिव्यक्ति का क्षण

वर्तमान के पीछे कितना अतीत जुड़ा हुआ है, इसका भी बहुत मूल्य है। क्या कोई ऋषभ अतीत के बिना ऋषभ बन सकता है? यह कभी संभव नहीं है। कोई भी व्यक्ति केवल वर्तमान के आधार पर ऋषभ नहीं बन सकता। अतीत में साधना करते-करते अभिव्यक्ति का एक क्षण आया और हमारे सामने ऋषभ का अवतरण हो गया। हमने अभिव्यक्ति के क्षण को देखा है किन्तु उसके पीछे जो अतीत है, जो साधना है, उसे देखना भी जरूरी है। प्रत्येक व्यक्ति के मन में भावना जागती है— मैं बड़ा बनूँ। यह महत्वाकांक्षा हो सकती है। महत्वाकांक्षा का होना कुछ अर्थों में बुरा भी नहीं है। किन्तु कोई भी महत्वाकांक्षा तब पूरी होती है जब उसके पीछे अतीत का योग होता है। अगर अतीत जुड़ा हुआ नहीं है तो कोरी महत्वाकांक्षा काम नहीं देती। वह निर्माण के स्थान पर विध्वंस कर देती है। निर्माण में समय लगता है।

### तोड़ो मत : जोड़ते रहो

एक व्यक्ति ने पूछा—भगवान् की शक्ति ज्यादा है या शैतान की।  
मैंने उत्तर दिया—भगवान् की शक्ति ज्यादा है।

नहीं, यह गलत बात है। भगवान् की शक्ति दिखाई नहीं देती, शैतान की शक्ति हमारे सामने है। वह जब चाहे बिगाड़ कर सकता है। शैतान दुनिया में भरे पड़े हैं, पग-पग पर हैं। पर भगवान् कहीं दिखाई नहीं देता।

तुम्हारा तर्क भी ठीक है, मेरा तर्क भी ठीक है।

कैसे ?

बनाने में समय ज्यादा लगता है, बिगाड़ने में कुछ भी समय नहीं लगता।

बुद्ध से एक व्यक्ति ने उपदेश देने की प्रार्थना की। उपदेश मांगने वाला व्यक्ति चोर था, डाकू था, बुरा आचरण करने वाला था। बुद्ध ने कहा—उपदेश बाद में दूंगा। पहले तुम सामने वाले पेड़ से पांच पत्तियां तोड़ लाओ। वह गया, पांच पत्तियां तोड़कर ले आया। उसे तोड़ने में एक मिनट भी नहीं लगा। बुद्ध ने कहा—इन पांच पत्तियों को फिर जोड़ आओ। वह बोला—यह काम संभव नहीं है। तोड़ना मेरे वश की बात थी पर जोड़ना मेरे वश की बात नहीं है। मैं तोड़ सकता हूँ जोड़ नहीं सकता। बुद्ध ने कहा—यही संबोधि है। तोड़ो मत, जोड़ने में लगे रहो।

### विकास की प्रक्रिया

विध्वंस का काम कोई भी कर सकता है पर निर्माण का काम कौन करता है ? यह कहना यौक्तिक है—शैतान की शक्ति कम है, भगवान् की शक्ति ज्यादा है। निर्माण करने में समय ज्यादा लगता है। विध्वंस करने में समय बहुत कम लगता है। व्यक्ति ने कंकड़ फेंका और घड़ा फूट गया। उसे फोड़ने में एक मिनट भी नहीं लगा किन्तु उसी घड़े के निर्माण में कितने श्रम और शक्ति का नियोजन हुआ। निर्माण समय-सापेक्ष है। अपने जीवन के निर्माण में भी बहुत समय लगता है। ऋषभ को ऋषभ बनने में कितना समय लगा ! वे एक दिन में ही ऋषभ नहीं बन गए थे। उनके पूरे अतीत को पढ़ा जाए तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है।

जैन साहित्य में पूर्वजन्म के वर्णन की सुन्दर विधा उपलब्ध होती है। जैन साहित्य में सैकड़ों-सैकड़ों व्यक्तियों के पूर्वजन्म बतलाए गए हैं। उससे विकास की पूरी प्रक्रिया ज्ञात होती है। व्यक्ति पहले कहां था और विकास करते-करते वह कहां तक पहुंच गया, इसे पूर्वजन्म की घटनाओं के आधार पर जाना जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति पहले साधारण स्थिति में होता है। वह साधारण स्थिति से अपनी यात्रा शुरू करता है। विकास की यह प्रक्रिया अनेक जन्म तक चलती रहती है। एक जन्म, दो जन्म, पांच जन्म, दस जन्म, बीस जन्म, तीस जन्म और जन्म जन्मान्तर

तक यह प्रक्रिया गतिशील रहती है। विकास करते-करते व्यक्ति उस बिंदु पर पहुंचता है जिस बिंदु पर पहुंचकर कोई भी व्यक्ति ऋषभ बन जाता है, महावीर बन जाता है। ऋषभ और महावीर एक ही दिन में नहीं बना जा सकता। जैन दर्शन का महत्वपूर्ण सिद्धान्त है—प्रत्येक व्यक्ति उच्च भूमिका तक पहुंच सकता है। किन्तु उस भूमिका तक वही पहुंच सकता है जिसने विकास की दिशा में, निर्माण की दिशा में प्रस्थान कर दिया है। विध्वंस की दिशा में जाने वाला उच्च भूमिका तक नहीं पहुंच सकता। ऋषभ विध्वंस की दिशा में नहीं गए। उन्होंने विकास और निर्माण की दिशा में अपने कदम बढ़ाए और इस पृथ्वी पर ऋषभ का अवतरण हो गया।

### ऋषभ : जन्मना प्राज्ञ

जैन दर्शन का सिद्धान्त है—कोई भी व्यक्ति ईश्वर होकर जन्म नहीं लेता। कोई अवतार नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति अपूर्णता के साथ जन्म लेता है। व्यक्ति व्यक्ति में विशेषता का तारतम्य हो सकता है। किसी व्यक्ति में अपूर्णता ज्यादा होती है और किसी व्यक्ति में कम। जो भी व्यक्ति जन्म लेता है, उसमें दो ज्ञान—मतिज्ञान और श्रुतज्ञान या दो अज्ञान—मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान अवश्य होते हैं। इससे कम नहीं होते। कोई व्यक्ति ऐसा भी होता है, जिसमें जन्म से तीन ज्ञान होते हैं। उसका तीसरा ज्ञान होता है—अवधिज्ञान, अतीन्द्रियज्ञान। ऋषभ पूर्ण नहीं थे, अपूर्ण थे। व्यक्ति अपनी साधना के द्वारा पूर्ण बनता है। ऋषभ में अपूर्णता के साथ-साथ कुछ विशिष्टता भी थी। वे अवधिज्ञान—अतीन्द्रिय ज्ञान के साथ जन्मे। जन्म से ही उनकी प्रज्ञा जागृत थी। जिस व्यक्ति की प्रज्ञा जागृत होती है उसके जीने का सारा क्रम दूसरे प्रकार का होता है। ऋषभ के जीवन का क्रम बचपन से ही दूसरे प्रकार का था। उन्हें विशिष्ट ज्ञान प्राप्त था। उनकी अतीन्द्रिय चेतना जागृत थी। इसीलिए उस समय के जितने यौगलिक जीव थे, उनका रहन-सहन और बातचीत का जो प्रकार था, ऋषभ का क्रियाकलाप वैसा नहीं था। कहा जाता था—इस कुमार का भाग्य ही अलग प्रकार का है। उसमें कुछ अतिरिक्तता थी। जब प्रज्ञा जागती है, व्यक्ति का व्यवहार बदल जाता है।

### प्रज्ञा जागरण की परिणति

प्राचीन घटना है। युवराज भद्रबाहु बहुत सुन्दर थे। उन्हें अपने सौन्दर्य पर बड़ा गर्व था, बहुत अहंकार था। वे एक दिन शहर के बाहर परिभ्रमण कर रहे थे। मार्ग में श्मशानघाट आ गया। उन्होंने देखा—एक मुर्दा जलाया जा रहा है।

वे पहली बार श्मशान की ओर गए थे और उन्होंने पहली बार ही मुर्दा जलाए जाने का दृश्य देखा था। भद्रबाहु ने अपने साथियों से पूछा—यहां आग क्यों जलाई जा रही है ?

साथियों ने उत्तर दिया—कुमार ! यहां चिता जलाई जा रही है ।

चिता क्या होती है ?

उसमें मुर्दा व्यक्ति को जलाया जाता है ।

मुर्दा कौन होता है ।

जो व्यक्ति निष्प्राण हो जाता है, वह मुर्दा होता है ।

ओह ! वह सुन्दर नहीं था इसलिए जलाया जा रहा है । यदि वह सुन्दर होता तो मरता नहीं और वह नहीं मरता तो उसे जलाया नहीं जाता ?

यह सुनकर साथी हंस पड़े । उन्होंने सोचा—कितना भोला है राजकुमार ! इतना भी नहीं जानता—मरने के बाद कोई व्यक्ति सुन्दर नहीं रहता । सुन्दर से सुन्दर व्यक्ति को भी मरने के बाद घर में नहीं रखा जा सकता ।

साथी बोले—कुमार ! यह बहुत सुन्दर था और बहुत संपन्न था ।

सुन्दर था तो मरा क्यों और मर गया तो जलाया क्यों जा रहा है ?

मरने के बाद सुन्दरता नष्ट हो जाती है, शरीर विकृत हो जाता है, उसमें बदबू आने लग जाती है । उसके पास कोई भी आना नहीं चाहता । उसे तो जलाना ही अच्छा होता है ।

क्या एक दिन मेरा भी यही हाल होगा ? मैं इतना सुन्दर हूँ । क्या मैं भी मर जाऊंगा ? क्या मुझे भी जला दिया जाएगा ?

कुमार के इन प्रश्नों का उसके मित्र क्या उत्तर देते ? वे सब मौन हो गए ।

भद्रबाहु ने मित्रों की आंखों में झांका । उनकी आंखों में यही उत्तर प्रतिबिम्बित था—भद्रबाहु ! तुम्हारी भी यही स्थिति होने वाली है । यह देख भद्रबाहु का अहंकार चूर-चूर हो गया । उनकी प्रज्ञा जाग गयी, उनके जीवन का सारा क्रम बदल गया । उनका खान-पान, रहन-सहन—सब कुछ बदल गया । उनकी चेतना परिवर्तित हो गई ।

जब प्रज्ञा जागती है, जीवन की शैली अपने आप बदल जाती है । जब तक प्रज्ञा न जागे, अतीन्द्रिय चेतना न जागे, इन्द्रियातीत चेतना का उदय न हो, तब तक जीवन शैली को बदलना बड़ा कठिन होता है ।

## ऋषभ का विवाह : नया मोड़

कुमार ऋषभ अतीन्द्रिय चेतना के धनी थे। उनके सारे जीवन का क्रम एक विशिष्टता लिए हुए था। ऋषभ का जीवन परिपूर्ण जीवन था। उन्होंने गृहस्थ का जीवन भी जीया। उन्होंने काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष—चार पुरुषार्थों का आश्रय लिया। हमें परिपूर्ण जीवन की कल्पना ऋषभ के जीवन से मिलती है। उन्होंने व्यक्तिगत जीवन के लिए बहुत किया, समाज के लिए बहुत किया, स्वयं के लिए किया, दूसरों के लिए किया। यदि किसी तीर्थंकर को समग्र जीवन के संदर्भ में देखा जाए तो कहा जा सकता है—ऋषभ का जीवन समग्रता का जीवन है।

वे कुमार अवस्था में चल रहे थे। कुमार अवस्था को अतिक्रान्त कर वे युवा बने। उनका विवाह कर दिया गया। उनके विवाह में भी एक नया मोड़ आया। यौगलिक युग में बहुपत्नी प्रथा नहीं थी। बहुपत्नी प्रथा का प्रारम्भ ऋषभ से होता है। उत्तरकाल में बहुपत्नी प्रथा को बहुत मूल्य मिला। एक-एक राजा के सोलह हजार रानियां होती थीं, अस्सी हजार और एक लाख रानियां होती थीं। यह मानदंड बन गया जिसके जितनी अधिक रानियां वह उतना ही बड़ा आदमी। शायद इस प्रथा को प्रारंभ करने का श्रेय भगवान् ऋषभ को मिला। पहला अवसर था—उनके दो पत्नियां हुईं—सुनंदा और सुमंगला। तब तक बहुपत्नी की प्रथा नहीं थी। एक जोड़ा जन्म लेता और वही पति-पत्नी के रूप में बदल जाता। कोई भी जोड़ा बीच में नहीं मरता, वे अंत समय तक एक साथ रहते, अकाल मृत्यु नहीं होती। अकाल मृत्यु का प्रसंग ही नहीं था—पर एक दुर्घटना घटी। एक जोड़ा था, उसमें पुरुष मर गया, स्त्री बच गई। उस एक एकाकी स्त्री को ऋषभ के साथ जोड़ दिया गया। सुनंदा और सुमंगला का ऋषभ के साथ विवाह हो गया।

### कुमार : दो अर्थ

ऋषभ कुमार से विवाहित बन गए। कुमार शब्द के दो अर्थ हैं। उसका पहला अर्थ है—जब तक राजा जीवित होता है तब तक राज-कुमार कुमार कहलाता है। ऋषभ कुमार—क्वारे नहीं रहे, शादीशुदा हो गए। आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है—ऋषभ का विवाह हो गया फिर भी वे बड़े अनासक्त भाव से वैवाहिक जीवन जी रहे थे।

भोगान् स्वाप्यप्यनासक्तः, पत्नीभ्यां बुभुजे चिरम् ।  
सद्वेदनीयमपि हि न कर्ण क्षीयतेऽन्यथा ॥

यह बात समझ में आने जैसी है। यदि व्यक्ति वैवाहिक जीवन जिए, काम-भोग का जीवन जिए और उसमें प्रबल आकर्षण हो तो वह न तीर्थकर बन सकता है, न मोक्ष पा सकता है। एक तर्क दिया गया—जो मोक्षगामी है, मुनि से तीर्थकर बनने वाला है, वह भोगता हुआ भी इतना अनासक्त रहता है कि उसमें लिप्त नहीं होता।

### ऋषभ की परिवार

ऐसा लगता है—ऋषभ को बचपन से ही नया-नया काम करने की आदत पड़ गई। उन्होंने अनेक परम्पराएं तोड़ीं। यौगलिक युग में एक युगल एक युगल को पैदा करता था। ऋषभ ने इस परम्परा को तोड़ा। उनके सौ पुत्र और दो पुत्रियां हुईं। सुमंगला ने निन्यानवे पुत्रों को जन्म दिया। सुनंदा ने बाहुबली को जन्म दिया। दो बहनें हुईं—ब्राह्मी और सुन्दरी। काफी ग्रन्थों में विवाद है—कौन किसका बेटा था और कौन किसकी बेटी थी। समवायांग के सूत्र के अनुसार इतना निश्चित है—सुमंगला भरत की माता थी। इससे यह सिद्ध होता है—सुनंदा बाहुबली की माता थी। ऋषभ का पूरा परिवार बन गया। उनका पुत्र भरत चक्रवर्ती बना।

### विकास के नये आयाम

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में ऋषभ का बहुत सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है। वे कितने आध्यात्मिक थे, इसका बहुत महत्वपूर्ण चित्रण किया गया है। उनके दोनों पुत्र—भरत और बाहुबली—अलग-अलग प्रकार के थे। उनकी दोनों कन्याएं ब्राह्मी और सुन्दरी भी अलग प्रकार की थीं। भगवान् ने उन्हें पढ़ाया, उनसे बहुत काम लिया। स्त्रीशिक्षा की बात भी ऋषभ से जुड़ी हुई है। उनकी कन्या ब्राह्मी के नाम से लिपि का प्रवर्तन हो गया। ब्राह्मी लिपि बहुत प्राचीन लिपि है। वह आज भी चल रही है। ऋषभ ने जीवन की एक नई शैली का प्रवर्तन किया। उनसे पूर्व न कोई पढ़ने वाला था और न कोई पढ़ाने वाला। न कोई गुरु था, न कोई शिष्य। जो जन्मता, वह वैसे ही परम्परागत ढंग से जीता। न विकास था, न विकास की कामना थी। ऋषभ ने विकास के नए आयाम प्रस्तुत किए।

### भोज : विप्र

राजा भोज नदी के तट पर खड़ा था। एक व्यक्ति नदी को चीरकर तट पर आ रहा था। वह फटेहाल था। राजा भोज ने पूछा—‘कियन् मात्रं जलं विप्र !’ नदी में जल कितना है ?

विप्र बोला—जानुदध्न नराधिप—नदी में घुटने तक पानी है ।

भोज ने दूसरा प्रश्न किया—‘ईदृशी किमवस्था ते?’— तुम विद्वान ब्राह्मण हो तुम्हारी यह अवस्था कैसे ?

ब्राह्मण ने कहा—‘न हि सर्वे भवादृशाः ।’—सब आप जैसे नहीं हैं, जो इस अवस्था को सुधार दें ।

राजा भोज इस उत्तर से प्रसन्न हो उठा । उसने उसकी अवस्था को सुधार दिया, उसे गरीब से संपन्न बना दिया ।

### कर्म का युग

सब व्यक्ति ऋषभ के समान नहीं होते, जो विश्व की अवस्था को सुधारे । ऋषभ ऋषभ थे । ऋषभ का अवतरण नई दिशा के उद्घाटन के लिए हुआ था । उन्होंने विश्व की सारी व्यवस्थाओं को सुधारना शुरू किया, युग को नया मोड़ दिया । जो युग चल रहा था, वह आदिवासियों का युग था । बहुत सीमित प्रवृत्तियाँ थीं, बहुत सीमित खान-पान था । व्यक्ति प्रतिदिन खाना नहीं खाता था । प्रश्न उभरता है—योगलिक मनुष्य इतना लंबा समय कैसे बिताते थे । न कोई ध्यान करता था, न धर्म करता था, न निंदा करता था, न कोई बातचीत का विषय था । फिर इतना लंबा समय कैसे बीतता ? समाधान दिया गया—उनका जीवन सहज-शांत था । वे अपने आपमें इतने लीन थे कि जैसे अपने भीतर से ही आनंद बरसता था । उनका समय अनायास कट जाता । आनंद का प्रवाह काल की अनुभूति को बदल देता है । उस समय कर्म भूमि अकर्म भूमि जैसी बनी हुई थी । जैन साहित्य में भूमि को दो भागों में बांटा गया—कर्म भूमि और अकर्म भूमि । अकर्म भूमि में कुछ करना नहीं होता । न खेती करनी होती है और न कुछ और कार्य करना होता है । वह ध्यान में होने वाली अकर्म की स्थिति भी नहीं है । उनके सहज अकर्म होता है । इसलिए उस भूमि में रहने वाले अकर्म भूमि के जीव कहलाते हैं । ऋषभ ने एक मोड़ दिया, कर्म को सार्थक बनाया । कर्म का युग शुरू हो गया ।

### ऋषभ के अवतरण का अर्थ

ऋषभ के अवतरण का अर्थ है—प्रवृत्ति का अवतरण । ऋषभ के अवतरण का अर्थ है—निवृत्ति का अवतरण । कोरा प्रवृत्ति का अवतरण होता तो ऋषभ का जीवन अधूरा बन जाता । कोरी निवृत्ति का अवतरण होता तो शायद काम नहीं चलता । ऋषभ के अवतरण का अर्थ है—समाज-व्यवस्था का अवतरण । ऋषभ के

अवतरण का अर्थ है— कला का अवतरण । ऋषभ के अवतरण का अर्थ है— विज्ञान, विद्या और शिल्प का अवतरण । एक व्यक्ति का अवतरण सारे युग का अवतरण बन गया । आज पूरे विकास के इतिहास के पीछे प्रागैतिहासिक काल में जाएं तो ऋषभ का अवतरण उसका एक जीता-जागता चित्रण है । उसे समझकर हम समाज के आदिम युग को समझ सकते हैं और उसका सही ढंग से चित्रांकन कर सकते हैं ।



## राजतंत्र का सूत्रपात

हमारी दुनिया द्वन्द्वात्मक है। जहां द्वन्द्व है वहां समस्याओं का होना अनिवार्य है। कहा जाता है—आज बहुत समस्याएं हैं पर सच्चाई यह नहीं है। अतीत में भी बहुत सारी समस्याएं थीं। किसी भी युग के दस्तावेज को देखें, उसमें यही परिलक्षित होगा—जमाना बहुत खराब है। चाहे दो सौ वर्ष पहले के दस्तावेज को देखें, चाहे दो हजार वर्ष पहले के दस्तावेज को देखें, यही स्वर मुखरित होगा—आज जमाना बहुत खराब आ गया है। यह शाश्वत सत्य है। समस्याएं सदा रही हैं। भ्रष्टाचार, अनैतिक व्यवहार आदि न जाने कितने दोषारोपण इस कलिकाल पर किए जाते हैं। यदि हम प्राचीनकाल में जाएं, यौगलिक युग पर दृष्टि डालें—तो वहां भी ये समस्याएं परिलक्षित होंगी। आज कहा जाता है—इस वैज्ञानिक युग में, औद्योगिक युग में अपराध तेजी से बढ़ रहे हैं। वह भी एक जमाना था, जब अपराध तेजी से बढ़ रहे थे, एक के बाद एक समस्या उभरती चली जा रही थी, दण्डनीति का प्रवर्तन आवश्यक था।

### कुल व्यवस्था : कुलकर

अपराध और अव्यवस्था के नियमन के लिए उस समय 'कुल' व्यवस्था का विकास हुआ। उसके मुखिया 'कुलकर' कहलाए। कुलकर सात हुए हैं—

- विमलवाहन
- चक्षुष्मान्
- यशस्वी
- अभिचंद्र
- प्रसेनजित
- मरुदेव
- नाभि

### हाकार नीति

कुलकर व्यवस्था में तीन दंडनीतियां प्रचलित हुईं। प्रथम कुलकर विमलवाहन

ने हाकार नीति का प्रवर्तन किया। उससे पहले कोई दंड नहीं था, दण्डनीति नहीं थी। विमलवाहन ने हाकार नीति के द्वारा समाज को अनुशासित बनाया। हां ! तूने यह किया—यह दण्ड मृत्युदण्ड से भी ज्यादा था। उन्होंने जहां ‘हां’ कह दिया वहां सारे अपराध समाप्त हो जाते थे किन्तु समय के साथ समस्याएं तेजी से बढ़ती चली गईं, जनता का मानस बदलता चला गया। उस समय ‘हां’ कहने का अर्थ था मौत। यह हाकार नीति दूसरे कुलकर चक्षुष्मान् तक प्रभावी रही। तीसरे कुलकर यशस्वी और चौथे कुलकर अभिचंद्र के युग में हाकार नीति ने अपना प्रभाव खो दिया। ‘हां’ कहना सामान्य बात हो गई। अपराध उससे आगे बढ़ गए।

### अपराध का कारण

अपराधों का भी अपना एक विज्ञान है। अपराध किस प्रकार बढ़ते हैं और क्यों बढ़ते हैं? किन परिस्थितियों में बढ़ते हैं? किस प्रकार की मानसिक परिस्थिति, किस प्रकार की शारीरिक रचना, किस प्रकार के शारीरिक रसायन और किस प्रकार का वातावरण—ये सब मिलकर अपराधों को जन्म देते हैं। ये सारे पहलू अपराध से जुड़े हुए हैं। उस युग में ये सारी परिस्थितियां बदलने लगीं, शरीर-रचना में थोड़ा-थोड़ा अन्तर आने लगा, मानसिक संरचना में भी थोड़ा-थोड़ा अन्तर आने लगा। जब शरीर संरचना और मानसिक संरचना—दोनों बदलते हैं तब बाहरी वातावरण बदलने लग जाता है, अपराध बढ़ने लग जाते हैं।

### माकार नीति

अपराधों की वृद्धि से यौगलिक जनता घबरा उठी। कुछ व्यक्ति यशस्वी के पास आए। उन्होंने निवेदन किया—महाराज ! अपराध बढ़ रहे हैं। हाकार नीति का प्रभाव कम हो गया है। अब ‘हां’ अपराध रोकने में अप्रभावी बन रहा है। आप दूसरा उपाय निकालें। यशस्वी ने सोचा—अपराधों को रोकने के लिए दूसरा उपाय निकालना चाहिए। उन्होंने ‘हां’ के स्थान पर ‘मा’ शब्द का प्रयोग किया। ‘मा’ शब्द ‘हां’ से भी शक्तिशाली बन गया। शब्दों का भी अपना प्रभाव होता है। यदि शब्दों के प्रभाव का इतिहास लिखा जाए तो उसमें ‘हां’ और ‘मा’ का इतिहास भी लिखा जाएगा। शब्द का बहुत प्रभाव होता है। ‘हां’ के स्थान पर ‘मा’ शब्द प्रभावी बन गया। यह दवा चमत्कारी बन गई। जहां छोटा अपराध होता वहां ‘हां’ शब्द का प्रयोग किया जाता और जहां गम्भीर अपराध होता वहां ‘मा’ शब्द का प्रयोग होने लगा। ‘मा’ बहुत कड़ा दंड माना जाने लगा। यशस्वी को संतोष की अनुभूति हुई।

उन्होंने अनुभव किया—बहुत ही उचित उपाय मेरे हाथ लग गया है। एक ऐसी दवा मेरे पास है, जो तत्काल अपना प्रभाव दिखाती है, जादू दिखाती है। परन्तु यह जादू भी ज्यादा समय टिक नहीं पाया।

### धिक्कार नीति

‘माकार’ नीति का प्रभाव भी काफी समय तक चलता रहा। पांचवें कुलकर के समय में ‘मा’ ने अपना प्रभाव खो दिया। ‘हा’ शब्द भी निष्प्रभावी हो गया, ‘मा’ शब्द भी निष्प्रभावी हो गया। पर आदमी सहजता से अपनी हार नहीं मानता। यदि एक चीज अपना प्रभाव खो देती है तो दूसरी चीज को खोजने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति कभी घुटने नहीं टेकता, हार नहीं मानता। इधर प्रकृति अपना काम करती है तो इधर मनुष्य का दिमाग अपना काम करता है। वह रुकता नहीं है, थमता नहीं है, वह निरन्तर आगे बढ़ता चला जाता है। प्रकृति के कितने ही थपेड़े आए, बाधाएं और रुकावटें आए, वह उन्हें पार करने के उपाय खोज लेता है।

हाकार और माकार के निष्प्रभावी होने पर पांचवें कुलकर ने एक नया शब्द खोजा—‘धिक्कार’। हाकार, माकार और धिक्कार। जहां सामान्य अपराध होता, वहां ‘हाकार’ नीति बरती जाती, जहां अपराध थोड़ा गम्भीर होता, वहां माकार नीति और जहां अपराध भयंकर होता, वहां धिक्कार शब्द का प्रयोग होता। इससे अपराध शांत हो जाते। तीनों दण्डनीतियों का स्वरूप यह था—

१. हाय ! तूने यह किया—हाकार नीति।
२. ऐसा आगे कभी मत करना—माकार नीति।
३. धिक्कार है तुझे कि तूने ऐसा किया—धिक्कार नीति।

### कृत नियम बदलते हैं

हम इतिहास को देखें। जैसे-जैसे समय का चक्र आगे खिसकता चला गया वैसे-वैसे समाज का मानस भी बदलता चला गया। बदलते परिवेश में धिक्कार भी अपना प्रभाव खोने लगा यह नहीं हो सकता—जो नियम मैंने आज बनाया, वह शाश्वत बन जाएगा। कोई भी कृत नियम शाश्वत नहीं होता। तर्क-शास्त्र का नियम है—‘यद् यद् कृतकं तद् तद् अनित्यम्, यथा—घटः’, जो-जो कृत होता है, किया हुआ होता है वह अनित्य होता है, जैसे घड़ा। नित्य वही हो सकता है, जो नैसर्गिक है, प्राकृतिक है। जो अकृत है, किसी के द्वारा बनाया नहीं गया है। और वही शाश्वत हो सकता है। शाश्वत नियम किसी के द्वारा बनाए नहीं जाते। वे नियत होते हैं।

जो प्रकृति का नियम है, वह नियति है। हम लोग नियति के अर्थ पर कुछ भ्रान्तियां कर लेते हैं। जो सार्वभौम नियम हैं, जागतिक नियम हैं, उन्हें कोई बदल नहीं सकता। किन्तु जो कृत नियम है, वह निश्चित बदल जाएगा।

### समस्या का विस्तार

जैसे-जैसे मनुष्य का आचरण बदलता गया वैसे-वैसे नियम बदलते चले गए। जब नाभि कुलकर का समय आया तब हाकार, माकार और धिक्कार—तीनों ने अपना प्रभाव खो दिया। उनके युग में तीनों अप्रभावी बन गए। जनता नाभि के पास गई। उसने कहा—महाराज ! अपराध की समस्या बनी हुई है। कोई भी उपाय कार्यकर नहीं बन रहा है। अब हम क्या करें ? वे ऋषभ के पास गए। उनके सामने समस्या को प्रस्तुत किया।

समाधान वही दे सकता है जो विशिष्ट ज्ञानी होता है। सामान्य आदमी विशिष्ट ज्ञान नहीं दे सकता और उसके बिना समस्या का समाधान उपलब्ध नहीं होता। नेता उसी को बनाया जाता है जो विशिष्ट ज्ञानी होता है, जो प्रत्येक समस्या का समाधान खोज लेता है। आचार्य को उपायज्ञ कहा गया है। नेता को भी उपायज्ञ कहा गया है। जो उपाय को नहीं जानता वह क्या समाधान देगा ? कैसे समाधान देगा।

### ऋषभ का चिन्तन

ऋषभ ने सोचा—समस्या का स्थायी समाधान होना चाहिए। किस प्रकार समाधान में परिवर्तन होता चला गया। हा से मा और मा से धिक्कार का प्रयोग किया गया, फिर भी समाधान नहीं हो पाया।

ऋषभ विशिष्ट ज्ञानी थे। कुछ कुलकर मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और जाति स्मृति (पूर्वजन्म) ज्ञान से संपन्न थे। उन्होंने जो समाधान खोजा, वह जातिस्मृति के द्वारा खोजा किन्तु ऋषभ तीन ज्ञान—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अविधिज्ञान से संपन्न थे। उनके पास जाति स्मृति ज्ञान भी था। उन्होंने अपने अतीन्द्रिय ज्ञान के बल पर परिस्थिति का पर्यवेक्षण किया।

ऋषभ ने लोगों से कहा—समस्या बहुत बढ़ गई है। इसका समाधान शब्दों से होने वाला नहीं है। जहां सब लोग मर्यादा का उल्लंघन करने लग जाते हैं वहां शब्द-शक्ति काम नहीं देती। उसका समाधान राजेशक्ति से ही हो सकता है। यदि राजा शासक बन जाए तो ये समस्याएं सुलझ सकती हैं—

ज्ञानत्रयधरो जातिस्मरः स्वामीत्यवोचत ।  
मर्यादोल्लंघिनां लोके, राजा भवति शासिता ॥

**ऋषभ की विनम्रता**

लोगों ने पूछा—राजा क्या होता है ।

ऋषभ बोले—एक राजा होता है, वह सबका शासक होता है ।

वह क्या करता है ?

वह सबका मालिक होता है । उसकी एक राजधानी होती है, उसके पास सेना होती है । उसके पास दण्डशक्ति होती है । उसके कई सचिव होते हैं । वह सचिवों के परामर्श से राज्य का संचालन करता है । उसके पास उसका अपना एक तन्त्र होता है ।

यह बहुत अच्छी बात है । क्या राजा बनने के बाद कोई अतिचार नहीं होगा ? अतिक्रमण नहीं होगा ?

ऐसा नहीं होगा, यह तो नहीं कहा जा सकता । किन्तु ऐसा करने वाला व्यक्ति दण्डित होगा । दण्डशक्ति के आधार पर व्यवस्था को ठीक रखा जाएगा । पदार्थ इधर-उधर नहीं ले जाए जाएंगे । इन पर नियमन होगा, अनुशासन होगा । जो नियमों का अतिक्रमण करेगा, उसे दण्ड दिया जाएगा ।

जहां कोई शासन नहीं था, तंत्र नहीं था, वहां यह उपाय एक सुन्दर समाधान लगा ।

लोगों ने कहा—आप ही ऐसा उपाय बता सकते हैं । आप ही हमारे राजा बन जाएं ।

यह काम मेरा नहीं है । आप लोग नाभि के पास जाइए । वे मेरे पिता हैं, कुलकर हैं । आप उनसे अनुरोध करें—आप हमें राजा दीजिए । आप अनुरोध करेंगे तो वे राजा बन जाएंगे ।

**राजा क्यों चाहिए ?**

सब लोग नाभि के पास गए । उन्होंने नाभि से अनुरोध किया—हमें राजा चाहिए । आप हमें राजा दीजिए ।

नाभि ने पूछा—राजा क्या होता है ?

उन्होंने सारी बात बताई ।

नाभि ने कहा—राजा के बारे में आपको किसने बताया ।

ऋषभ ने ।

राजा की क्या आवश्यकता है ?

महाराज ! आप देखिए समस्याएं उलझ रही हैं । कोई काम नहीं हो रहा है । अपराध बढ़ते ही चले जा रहे हैं । अगर अपराध इसी प्रकार बढ़ते चले गए तो अच्छा नहीं होगा । इन सारे अपराधों की रोकथाम के लिए एक राजा की आवश्यकता है । आप हमें राजा दें, हमारा काम हो जाएगा ।

नाभि कुछ क्षण के लिए मौन हो गए ।

### राजतंत्र का सूत्रपात

दो आदमी समय पर मौन रहते हैं । जो व्यक्ति गंभीर होता है वह मौन से काम लेता है और जो व्यक्ति बहुत कंजूस होता है वह मौन रहता है । मौन रहने से सोचने का अवकाश मिल जाता है, सोचने की शक्ति आ जाती है ।

नाभि ने सोचा—जो प्रस्ताव आया है, उसे स्वीकार किया जाए ? क्या इससे समस्या का समाधान हो जाएगा ? गम्भीर मन्थन के बाद उन्हें यह प्रस्ताव उपयुक्त लगा । उन्होंने कहा—आपको राजा मिल जाएगा ।

आप घोषणा करें, हमारा राजा कौन होगा ?

इससे आपको क्या मतलब है ?

हम नाम सुनना चाहते हैं ।

वह आपके सामने आ जाएगा ।

हम उसका नाम अभी सुनना चाहते हैं ?

आप किसे चाहते हैं ?

जिसे आप उपयुक्त समझें लेकिन उसकी घोषणा अभी कीजिए ।

तुम्हारा राजा होगा ऋषभ ।

### राजा और देवता

जनता ने तालियों की गड़गड़ाहट ने इस घोषणा का स्वागत किया । लोग खुशी से झूम उठे । उन्होंने नाच-गान किया, हवा में कपड़े उछाले । वे लोग दौड़े-दौड़े ऋषभ के पास पहुंचे । उन्होंने हर्षोल्लासभरे स्वरों से कहा—आप आज हमारे राजा बन गए हैं । आप इस राज्य को संभालें । हम आपकी प्रजा हैं । आप हमारी समस्या का निराकरण करें, सारे अपराधों को मिटाएं । हम सब परेशान हैं । दिन-प्रतिदिन

अपराध बढ़ते ही जा रहे हैं। आप अपने पद को संभालें और अपने कार्यों से शांतिपूर्ण जीवन का मार्ग प्रशस्त करें।

यह राजतन्त्र के सूत्रपात का पहला क्षण था। यह समाज के आदिम युग के इतिहास का वह दिन था, जिस दिन राजतंत्र का सूत्रपात हुआ। राजतन्त्र का इतिहास बहुत लम्बा है किन्तु उसका आदि बिन्दु आदिम युग में है। मात्र हिन्दुस्तान का ही नहीं, पूरे विश्व का इतिहास राजतंत्र का इतिहास है। ऋषभ पहले राजा बने। राजाओं का राज्य स्थापित हो गया और राजा इतने प्रतिष्ठित हो गए कि राजा और देवता—दो नहीं रहे। राजा की मान्यता भी देवता के रूप में होने लगी। जितना पूज्यनीय, सम्माननीय और आदरणीय देवता होता है उतना ही श्रद्धा और आदर का पात्र राजा बन गया। राजा की प्रतिष्ठा बढ़ती चली गई। पृथ्वी पर उससे बढ़कर कोई सामान्य व्यक्ति नहीं रहा। राजा एक दिव्य शक्ति बन गया।

### राजतन्त्र का उद्देश्य

जिस दिन ऋषभ के राजा बनने की घोषणा हुई, वह राजतंत्र के इतिहास का पहला क्षण था। राजतंत्र के इतिहास का पहला सूर्योदय हुआ, सूर्य की पहली किरणें फूटीं। उसी दिन राजतंत्र की घोषणा हुई और विधिवत् समाज-व्यवस्था को चलाने का सूत्रपात हुआ। बड़ी मछली छोटी मछली को न निगल जाए। कोई भी व्यक्ति शक्तिशाली हो सकता है किन्तु वह अपनी शक्ति का दुरुपयोग न करे, कमजोर या शक्तिहीन को सताए नहीं, उनके अधिकारों का हनन न करे, उनके शांतिपूर्ण जीवन में बाधा न डाले। इन सारी बातों के लिए राजतंत्र का उद्भव हुआ। आज ये विचार भी पुराने हो गए हैं। प्राचीनकाल में राजतंत्र के सूत्रपात के ये कारण बतलाए गए हैं किन्तु अरस्तु ने इन तर्कों को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—यदि राजतंत्र होने का अर्थ यही है कि शक्तिशाली समाज या शक्तिशाली व्यक्ति दूसरे को सताए नहीं, तो वैसा राजतंत्र कोई अर्थवान् राजतंत्र नहीं है। वास्तव में राजतंत्र के प्रवर्तक का उद्देश्य होना चाहिए—सद्गुणों का विकास। यही कारण स्थायी होता है, शाश्वत होता है और इसे ही महत्त्व दिया जा सकता है। जो राजतंत्र समाज में सद्गुणों का विकास न कर सके, जिसका उद्देश्य मात्र दण्ड देना ही रह जाए, वह अधिक समय तक टिक नहीं पाता। राजतंत्र में उदात्त नायक का चरित्र सामने आए तभी राजतंत्र की महिमा गाई जा सकती है।

यह दिल को छू लेने वाली बात है। राजतंत्र का उद्देश्य दण्डशक्ति के द्वारा केवल अपराध का नियंत्रण नहीं है। उसका उद्देश्य है—मानवीय गुणों का विकास।

यह आज भी विवेचनीय विषय है— राजतंत्र के इतिहास में जैन आचार्यों का क्या-क्या अभिमत रहा है ? उन्होंने उसे किस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बतलाया है ?

**समाज व्यवस्था : धर्म**

ऋषभ केवल दण्ड देने के लिए राजा नहीं बने । वह एक पहलू हो सकता है । उन्होंने जो व्यवस्था दी, वह दो कोणों पर आधारित लगती है। वह राजतंत्रीय समाज अच्छा होता है, जहां अर्थ और पदार्थ का न अभाव होता है और न प्रभाव होता है । समाज के लिए अर्थ और पदार्थ का अभाव होना अच्छा नहीं है । उनका अभाव होना समाज के पतन का कारण है । उनका अभाव न होना, यह समाज व्यवस्था का अंग बन जाता है और उनका प्रभाव न होना, यह धर्म का अंकुश बन जाता है । इन दो अंकुशों के आधार पर ऋषभ ने राजतंत्र को संभाला । ऋषभ का राजा के पद पर विधिवत् अभिषेक हुआ । अभिषेक की लम्बी प्रक्रिया चली । ऋषभ राजकुमार से राजा बन गए, राज्य की व्यवस्था में जुट गए ।



## ऋषभ और समाज व्यवस्था

कर्तव्य और धर्म—इन दोनों का विवेक स्पष्ट नहीं होता है तो समाज समस्याओं से घिर जाता है। यह आज की बड़ी समस्या है। आज कर्तव्य और धर्म का विवेक स्पष्ट नहीं लगता। आचार्य भिक्षु की सबसे बड़ी देन है—कर्तव्य और धर्म के विवेक का पुनःजागरण, कर्तव्य और धर्म के विवेक की पुनःस्थापना। उन्होंने बहुत स्पष्टता से इस तथ्य का प्रतिपादन किया—कर्तव्य अलग होता है और धर्म अलग होता है।

### भोजन की समस्या

ऋषभ राजा बने। राजा का अपना कर्तव्य होता है। उन्होंने अपने दायित्व का निश्चय किया। उन्होंने सबसे पहले सोचा—प्रजा के प्रति मेरा दायित्व क्या है? मैं प्रजा के लिए क्या करूँ? उन्होंने प्रजा की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। सबसे पहली आवश्यकता होती है भोजन की। भोजन की पूर्ति समस्या का रूप ले रही थी। कल्पवृक्षों से जो कुछ मिलता था, उससे जीवन का काम चलना कठिन हो गया। भगवान् ऋषभ ने इस समस्या को सुलझाने का संकल्प किया। उन्होंने लोगों को खेती करना सिखाया। लोगों ने खेती करना प्रारंभ कर दिया। अनाज पैदा होने लगा। खाद्य पदार्थों की समस्या सुलझने लगी। लोगों ने पहली बार अनाज खाया। अनाज को पकाने का न साधन उपलब्ध था और न ही उसके पकाने का बोध था। लोग कच्चा अनाज पचा नहीं सके। समस्या पैदा हो गई। अनाज बहुत शक्तिशाली होता है। जिस भूमि पर पहली बार अन्न उपजा, वह कितना शक्तिशाली रहा होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। लोग ऋषभ के पास आए। उन्होंने निवेदन किया—महाराज! हमने अनाज खाया किन्तु अजीर्ण हो गया। अनाज पचता नहीं है। हम क्या करें? ऋषभ ने कहा—तुम अनाज को हाथ से मलकर खाओ, उसके छिलके उतार कर खाओ, उसे जल से धोकर खाओ। लोगों ने वैसा किया फिर भी वे अनाज को पचा नहीं पाए।

## समाज विकास का आधार

एक दिन ऐसा हुआ—जंगल में अनायास एक प्रकाश दिखाई दिया। लोग उस ओर दौड़ पड़े। उन्होंने सोचा—यह क्या है? उन्होंने कभी प्रकाश देखा नहीं था। उन्होंने प्रकाश में हाथ डाला, हाथ जल गए। उन्हें असह्य पीड़ा हुई। वे दौड़े-दौड़े ऋषभ के पास पहुंचे, बोले—महाराज! न जाने जंगल में क्या आया है? हमारे हाथ जल गए हैं। ऋषभ ने अपने अतीन्द्रिय ज्ञान का प्रयोग किया। उन्होंने जाना—अग्नि पैदा हो गई है।

मानवीय समाज के विकास का सबसे बड़ा साधन है अग्नि। अगर मानवीय विकास के इतिहास से अग्नि को निकाल दें तो समाज का विकास समाप्त हो जाता है। अगर विद्युत को निकाल दिया जाए तो वैज्ञानिक युग का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए। अग्नि और विद्युत्—ये दो ऐसे तत्व हैं जिनके आधार पर समाज का विकास टिका हुआ है। अग्नि की उत्पत्ति का कारण है—स्निग्ध और रुक्ष-काल का योग। एकान्त स्निग्धकाल और एकांत रुक्षकाल में अग्नि पैदा नहीं होती। ऋषभ ने कहा—अब स्निग्धरुक्ष काल आ गया है इसलिए अग्नि पैदा हो गई है—

स्वाम्यप्यूचं स्निग्धरुक्षकालादेशोग्निरुत्थितः ।

नैकान्तरुक्षे नैकान्तस्निग्धे काले भवत्यसौ ॥

## ब्रिटेनिका का अभिमत

ब्रिटेनिका का जो विश्व कोश है, उसमें लिखा गया है—‘नेगेटिव और पॉजीटिव—दोनों के योग से विद्युत पैदा होती है। इस सिद्धान्त को हजारों वर्ष पहले जैन लोगों ने समझ लिया था।’ जब तक काल, स्निग्ध और रुक्ष नहीं था तब तक ऋषभ भी अग्नि पैदा नहीं कर सकते थे। जब तक हमारे वातावरण में पॉजीटिव और नेगेटिव का योग नहीं होता तब तक विद्युत् पैदा नहीं हो सकती।

ऋषभ ने कहा—यह जो प्रकाश दिखाई दे रहा है, वह आग है। इससे तुम्हारे खाने की समस्या का समाधान हो जाएगा। अब तुम अनाज को अग्नि में पकाकर खाओ। लोगों ने अनाज को अग्नि में डाला। वह पका नहीं, जल गया। लोग पुनः भगवान् के पास आए। उन्होंने निवेदन किया—महाराज! समस्या का समाधान नहीं हुआ। वह तो उलझी ही चली जा रही है। सारा अनाज जलकर भस्म हो रहा है।

उस युग के लोग कितने भोले थे! अज्ञान के साथ बहुत सारी समस्याएं स्वतः आ जाती हैं।

## आधार और आधेय का पहला सम्बन्ध

ऋषभ ने कहा—एसे नहीं पकेगा अनाज ।

हम कैसे पकाएं अनाज को ?

ऋषभ लोगों के साथ गए । उन्होंने कहा—मिट्टी खोदो ?

लोगों ने मिट्टी खोद डाली ।

इसमें पानी डालकर इसका मर्दन करो ?

लोगों ने ऋषभ के कथन के अनुसार मर्दन किया ।

इसका चाक बनाओ ।

वह भी बन गया ।

उन्होंने चाक से घड़ा बनाने की विधि समझाई ।

उस विधि से लोगों ने घड़ा तैयार कर लिया ।

घड़े में अनाज डालो ।

प्रजा ने घड़े को अनाज से भर दिया ।

इसे आग पर रखो ।

घड़े को आग पर रखा गया और अनाज भी पक गया ।

पहली बार आधार और आधेय के सम्बन्ध का विकास हुआ । इससे पहले न कोई आधार था और न कोई आधेय था । घड़ा आधार है और उसमें जो है, वह आधेय है । आधार को आधेय का सम्बन्ध मिला और एक समस्या को समाधान मिल गया ।

## प्रवृत्ति का चक्र

एक समस्या सुलझी परन्तु दूसरी समस्या उत्पन्न हो गई । ऐसा लगता है—ऋषभ के वे दिन नित नई समस्याओं को सुलझाने के दिन थे । प्रतिदिन नई समस्या आती और प्रतिदिन उसका समाधान खोजा जाता । घड़ा बन गया, अनाज पैदा हो गया । प्रश्न पैदा हुआ— अनाज का क्या करें ? सब जगह अनाज नहीं होता । जहां अनाज नहीं होता है, वहां लोग भूखे मरेगे । उन तक अनाज कैसे पहुंचाया जाए ? संभव है । इस प्रश्न के समाधान स्वरूप गाड़ी का निर्माण हुआ होगा । माना जाता है जिस दिन पहिया बना, उस दिन मानव समाज का भाग्योदय हुआ । पहिया हमारी गति का आधार बनता है । गति में त्वरता आ गई । एक आदमी कितना तेज चल सकता है । पहिया बहुत तेज और बहुत भार ढोने का एक माध्यम बन गया । गाड़ी

बनाने का प्रसंग सामने आया। पहला शिल्पी बना कुम्हार और दूसरा शिल्पी बना—सुथार। गाड़ी का निर्माण हो गया। इस प्रकार धीरे-धीरे सौ शिल्पकर्मों का विकास होता चला गया।

एक नियम है—जैसे-जैसे प्रवृत्ति बढ़ेगी, वैसे-वैसे कर्म बढ़ेगा और साथ-साथ समस्याएं भी बढ़ेंगी। ऋषभ ने प्रवृत्ति और कर्म का एक चक्र शुरू कर दिया।

भगवान् ने तीन दिशा में विकास को गति दी—

- बहतर कलाओं का विकास
- चौसठ स्त्री कला का विकास
- सौ शिल्प कर्म का विकास

**सावद्य कार्यों का प्रवर्तन क्यों ?**

प्रश्न होता है—ऋषभ ने ये सब कार्य क्यों किए ? जबूद्रीप प्रज्ञप्ति के सूत्रकार के मन में भी यह प्रश्न प्रस्तुत हो गया था—ऋषभ ने यह सब कुछ क्यों किया ? भगवान् ने ये तीनों काम प्रजा के हित के लिए किए किन्तु भगवान् ने इन सावद्य कार्यों का उपदेश क्यों दिया ? आचार्य हेमचन्द्र के सामने भी यह प्रश्न था—तीन ज्ञान के धारक ऋषभ ने कर्मबन्ध के ये सारे काम क्यों किए ? उन्होंने इनका प्रवर्तन किसलिए किया ? समाज के लिए इनका विकास करना सावद्य है, इनमें आध्यात्मिक धर्म नहीं है। यह जानते हुए भी ऋषभ ने जिन कर्मों का विकास किया, उसका कारण क्या था ? वहां आत्मानुकंपा का प्रश्न भी नहीं था। इन सबके प्रवर्तन का उद्देश्य क्या हो सकता है ? आचार्य हेमचन्द्र ने एक समाधान प्रस्तुत किया है—

**एतच्च सर्व सावद्यमपि लोकानुकंपया।**

**स्वामी प्रवर्तयामास, जानन् कर्तव्यमात्मनः ॥**

ये सारे कार्य सावद्य हैं, यह जानते हुए भी अपने कर्तव्य को मुख्यता देकर ऋषभ ने लोकानुकंपा से इन कार्यों का प्रवर्तन किया।

**धर्म और कर्तव्य**

जब व्यक्ति कर्तव्य को ओढ़ लेता है और उसका निर्वहन नहीं करता है तब समस्या पैदा हो जाती है। व्यक्ति कर्तव्य को न ओढ़े, यह हो सकता है किन्तु कर्तव्य को ओढ़ने के बाद उससे पीछे हटना, उसका निर्वाह न करना उचित नहीं माना जा सकता। गाय का दूध दुहना है किन्तु घास डालते समय व्यक्ति सोचने लग जाए—यह काम मेरे से नहीं हो सकता। यह व्यक्ति की दोहरी मूर्खता है। जिस व्यक्ति को

दूध से कोई मतलब नहीं है, वह ऐसी बात सोच सकता है। जिसे आत्मस्थ रहना है उसे गाय के खूँटे से बांधने की जरूरत नहीं होती। एक व्यक्ति कहे—मैं गाय का दूध चाहता हूँ किन्तु उसे खाना नहीं खिलाऊँगा, पानी नहीं पिलाऊँगा तो क्या कर्म का बन्ध नहीं होगा? विवेक जागे बिना इस मूर्खता को मिटाया नहीं जा सकता। व्यक्ति सारे कार्य करना चाहता है किन्तु जहाँ कर्तव्य पालन का प्रश्न आता है वहाँ उसे पाप की चिन्ता सताती है। इसे उसकी सही समझ नहीं माना जा सकता।

### जरूरी है विवेक

आचार्य भिक्षु ने जो दर्शन दिया और आचार्य हेमचन्द्र का जो मतव्य है, उसमें कोई अन्तर नहीं है। आज इस विवेक का जागना आवश्यक है—कर्तव्य अलग होता है और धर्म की आराधना का मार्ग अलग होता है। लोकमान्य तिलक ने गीता रहस्य में इसकी बहुत सुन्दर मीमांसा की है—जब तक लौकिक धर्म और आध्यात्मिक धर्म को अलग-अलग नहीं समझेंगे तब तक समस्या का समाधान नहीं होगा। अभी कुछ दिन पूर्व महावीर वनस्थली का उद्घाटन करते हुए प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने कहा—धर्म से राजनीति को अलग रखा जाए। यह आचार्य भिक्षु के दर्शन का फलितार्थ है। आचार्य भिक्षु ने यही कहा था—धर्म अलग है, समाजनीति और राजनीति अलग है। समाज की अपनी आवश्यकताएं और उपयोगिताएं हैं, उनको समाज का व्यक्ति छोड़ नहीं सकता किन्तु जहाँ धर्मनीति-राजनीति और समाज नीति का मिश्रण होता है वहाँ हजारों समस्याएं पैदा हो जाती हैं। समस्याओं से मुक्ति इस विवेक से ही सम्भव है—धर्म अलग है, राजनीति और समाजनीति अलग है। तेरापंथ धर्मसंघ में प्रारम्भ से ही छोटे बच्चों को सिखाया जाता है—तीन नीतियां होती हैं—धर्मनीति, राजनीति और समाजनीति। ये तीनों अलग-अलग हैं और इनका अपना-अपना कार्यक्षेत्र है।

### ऋषभ : राज्य का दायित्व

ऋषभ ने समाज के लिए जो कुछ किया, वह अपने कर्तव्य की पूर्ति के लिए किया। वे राजा थे। राजा का अपना दायित्व होता है, अपना कर्तव्य होता है। उसे अपने कर्तव्य और दायित्व का निर्वाह करना ही होता है। ऋषभ संन्यासी नहीं बने थे। जो राजसिंहासन पर बैठा है, जिसने राज्य का दायित्व ओढ़ा है, उसे प्रजाहित की बात सोचनी ही पड़ती है। ऋषभ ने भी वैसा ही किया। उन्होंने प्रजाहित के लिए सुन्दर मार्गदर्शन दिया। वे प्रजाहित में कार्य करते चले गए। राजा का अपना

हित नहीं होता। वास्तव में राजा वही होता है जिसका चिंतन प्रजाहित में हो। प्रजा के हित में ही राजा का हित निहित होता है। यदि लोकतंत्र के संदर्भ में देखें तो शासक का अपना हित नहीं होना चाहिए। जहां शासक का अपना हित होता है वहां शासनतंत्र ही गड़बड़ा जाता है। ऋषभ के सामने भी यह अहं प्रश्न था। ऋषभ आध्यात्मिक पुरुष थे। उन्होंने प्रजाहित का अतिक्रमण नहीं किया। उन्होंने सारी शक्ति प्रजाहित में लगा दी। जनता की प्राथमिक आवश्यकताओं के साधन सुलभ हो गए। अंसि, मषि, कृषि का विकास होने लगा। जनता का खान-पान, रहन-सहन, व्यापार व्यवसाय व्यवस्थित बन गया। खेती को जनता तक पहुंचाने के लिए विनिमय का साधन व्यापार हो गया। लोग व्यवसायी बन गए। जब प्रगति बढ़ती है तब सुरक्षा की भी आवश्यकता होती है। सुरक्षा के प्रश्न से सुरक्षा तंत्र का निर्माण हो गया। तीन कार्य संपादित हो गए—कृषि, वाणिज्य और सुरक्षा। चौथा कार्य था—शासन व्यवस्था। ऋषभ ने शासन की व्यवस्था को भी एक रूप प्रदान कर दिया।

### शिल्पकला और व्यवसाय का प्रशिक्षण

ऋषभ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को बहतर कलाएं सिखलाईं। कनिष्ठ पुत्र बाहुबली को प्राणी की लक्षण विद्या का उपदेश दिया। बड़ी पुत्र ब्राह्मी को अठारह लिपियों और सुन्दरी को गणित का अध्ययन कराया। धनुर्वेद, अर्थशास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र, क्रीडा-विधि आदि-आदि विद्याओं का प्रवर्तन कर लोगों को सुव्यवस्थित और सुसंस्कृत बना दिया।

अग्नि की उत्पत्ति ने विकास का स्रोत खोल दिया। पात्र, औजार, वस्त्र, चित्र आदि शिल्पों का जन्म हुआ। अन्नपाक के लिए पात्र-निर्माण आवश्यक हुआ। कृषि गृह-निर्माण आदि के लिए औजार आवश्यक थे, इसलिए लोहकार शिल्प का आरम्भ हुआ। सामाजिक जीवन ने वस्त्र-शिल्प और गृह-शिल्प को जन्म दिया।

नख, केश आदि को काटने के लिए नापित-शिल्प (क्षौर-कर्म) का प्रवर्तन हुआ। इन पांचों शिल्पों का प्रवर्तन अग्नि की उत्पत्ति के बाद हुआ।

पदार्थों के विकास के साथ-साथ उनके विनिमय की आवश्यकता अनुभूत हुई। उस समय ऋषभ ने व्यवसाय का प्रशिक्षण दिया।

कृषिकार, व्यापारी और रक्षक-वर्ग भी अग्नि की उत्पत्ति के बाद बने। कहा जा सकता है—अग्नि ने कृषि के उपकरण, आयात-निर्यात के साधन और अस्त्र-शस्त्रों को जन्म दे मानव के भाग्य को बदल दिया।

पदार्थ बढ़े तब परिग्रह में ममता बढ़ी, संग्रह होने लगा । कौटुम्बिक ममत्व भी बढ़ा । लोकैषणा और धनैषणा के भाव जाग उठे ।

**अपराधी कौन होता है ?**

इन सारी व्यवस्थाओं के साथ-साथ दण्डनीति का भी विकास हुआ । कुलकरोँ के समय में हाकार, माकार और धिक्कार—ये दण्डनीति के तीन अंग थे । राजतंत्र के उदय के साथ नई दंडनीति का विकास हुआ । जैसे-जैसे राजतंत्र में प्रगति बढ़ी, विकास बढ़ा, कारोबार बढ़ा, सुरक्षा तंत्र मजबूत हुआ, वैसे-वैसे जनता का मानस बदलता चला गया । प्रजा में लोभ का भाव बढ़ गया । जब लोभ बढ़ता है तब सारी बातें बढ़ जाती हैं । लोभ बढ़ता है तो सारे अपराध बढ़ जाते हैं । लोभ सब अपराधों का मूल है । भावात्मक बीमारियों का कारण भी लोभ बनता है । शरीरशास्त्री कहते हैं—जब प्रतिरोधात्मक रक्षा प्रणाली और जैविक प्रणाली कमजोर होती है तब बीमारी पैदा होती है । प्राकृतिक चिकित्सा का सिद्धांत है—सारी बीमारी पेट से शुरू होती है । आयुर्वेद में लोभ के दो परिणाम बतलाए गए हैं । लोभ से पाचनतंत्र प्रभावित होता है । जितना लोभ बढ़ेगा, उतना पाचन-तंत्र खराब होता चला जाएगा । लोभ का दूसरा परिणाम है—हार्ट की दुर्बलता । इस बात पर भी ध्यान दें—जब अपराध बढ़ेगा, तब पाचन-तंत्र बिगड़ेगा । पाचन-तंत्र बिगड़ने से मस्तिष्क का तंत्र प्रभावित होगा और आदमी अपराधी बन जाएगा । जिस व्यक्ति का पाचन-तंत्र स्वस्थ है, उसका मस्तिष्क स्वस्थ है । वह व्यक्ति अपराधी नहीं होगा । अपराधी होने के लिए पाचन-तंत्र का बिगड़ना मुख्य कारण बनता है ।

**दण्ड के चार प्रकार**

समाज विकास के साथ-साथ अपराध पनपने लगे । अपराधों की रोकथाम के लिए दण्डनीति को नया आयाम दिया गया । ऋषभ ने चार प्रकार के दंड का विधान किया—

- **परिभाषित**—थोड़े समय के लिए नजरबन्द करना—क्रोधपूर्ण शब्दों में अपराधी को 'यहीं बैठ जाओ' का आदेश देना ।
- **मण्डली बन्द**—इस दण्ड में अपराधी से कहा जाता—तुम इस सीमा से बाहर नहीं जा सकते ।
- **नजरबन्द**—बन्धन का प्रयोग । इस दण्ड को पाने वाला व्यक्ति अपने घर से बाहर नहीं जा सकता या अमुक स्थान से बाहर नहीं जा सकता ।

- **दण्ड प्रहार**—दण्ड प्रयोग । यह सबसे बड़ा दंड था । भयंकर अपराधों को डंडों से मारना ।

### मृत्युदण्ड : अमानवीय कृत्य

ऋषभ के समय में इन चार दंडों का विकास हुआ । कारावास और दण्ड प्रहार दण्ड संहिता में मान्य थे किन्तु उस समय मृत्युदण्ड का विकास नहीं हुआ । मृत्युदण्ड का प्रचलन कब हुआ, इसे कब मान्यता मिली, यह निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता । मृत्युदण्ड एक प्रकार का अमानवीय कृत्य सा लगता है । एक ओर इसका विरोध हो रहा है तो दूसरी ओर मृत्युदण्ड देने का सिलसिला जारी है । अभी कुछ दिन पहले समाचार पत्र पढ़ा—ईरान में पांच सौ व्यक्तियों को फांसी की सजा दे दी गई । यह बहुत विचित्र बात है । सारे संसार में एक प्रश्न उभर रहा है—मृत्युदण्ड को समाप्त किया जाए । मृत्युदण्ड से अपराध रुके हैं, ऐसा प्रतीत नहीं होता । अपराधी अपराध करते चले जा रहे हैं और सरकारें उन्हें फांसी पर चढ़ाती चली जा रही हैं । अपराध रोकने की जो दूसरी प्रक्रिया है, उस ओर कोई ध्यान नहीं दे रहा है । न जाने कितने राजनीतिक लोग फांसी के तख्ते पर चढ़ जाते हैं । यदि किसी से प्रतिशोध लेना है तो उस पर कोई आरोप मढ़ दो और उसे सिद्ध कर फांसी पर चढ़ा दो । विश्व के अनेक प्रधानमंत्री इस प्रकार फांसी के फन्दे पर चढ़ाए जा चुके हैं । इसे मानवीय कृत्य नहीं कहा जा सकता ।

### दण्ड की नई व्यवस्था

ऋषभ के युग में दण्ड का जो विकास हुआ, वह इस प्रकार से नहीं हुआ । इतने क्रूरतापूर्ण दण्ड का विधान नहीं था । पहले अपराधी को यह अनुभव कराया जाता—तुमने अपराध किया है, गलत कार्य किया जाता है । उसके बाद उसे दण्डित किया जाता । कारावास की बात तो समझ में आ सकती है । जो ज्यादा अपराध करता है, उसे एक स्थान पर बन्द कर दिया जाए तो वह अपराध नहीं कर पाएगा । किन्तु अपराधी को बहुत क्रूर यातनाएं देना, सूली पर चढ़ा देना, उसके शरीर के अवयव को काट देना, अंग-भंग कर देना, अमानवीय कृत्य सा लगता है । मानवीय दृष्टि से सोचें तो ये कृत्य उचित नहीं लगते । ऋषभ के समय में जो दण्ड का विकास हुआ, वह समझदारी से परिपूर्ण लगता है । ऋषभ ने अपराधों की रोकथाम भी की और ऐसी व्यवस्था को जन्म दिया, जिससे अपराध भी न बढ़ें तथा मानवीय क्रूरता को प्रश्रय भी न मिले । उनके इस उपक्रम से दण्ड की नई व्यवस्था का सूत्रपात हो गया ।



## स्त्री शिक्षा का श्रेय

ऋषभ ने शिक्षा पर भी पर्याप्त ध्यान दिया। उन्होंने भरत, बाहुबली आदि पुत्रों को पढ़ाया। स्त्री-शिक्षा का सूत्रपात भी उनके द्वारा हुआ। उन्होंने ब्राह्मी को अट्टारह लिपियां सिखाईं। आज लिपिकला में कौन कुशल है, यह नहीं कहा जा सकता किन्तु ऋषभ ने लिपिकला का अधिकार प्रदान स्त्रियों को सौंपा। लिपिकला के क्षेत्र में पहला स्थान महिलाओं का है और उन्हें यह स्थान ऋषभ ने प्रदान किया। उन्होंने सुन्दरी को गणित विद्या सिखाई। गणित पर भी महिलाओं का अधिकार सुनिश्चित बन गया। स्त्री-शिक्षा के विकास का वह आदि बिन्दु था। मध्ययुग हिन्दुस्तान के लिए अन्धकार का युग रहा। महाभारत युद्ध के बाद ज्ञान-विज्ञान, कला, सभ्यता आदि का ह्रास हो गया। इन सबके जो ज्ञाता थे, वे महाभारत के युद्ध में मारे गए। ऐसी स्थिति में महाभारत का युद्ध हिन्दुस्तान की विद्याओं के लिए अभिशाप बन गया।

## ऋषभराज्य : रामराज्य

वह एक युग था, जब ऋषभ ने अपने घर को संभाला, अपनी प्रजा को संभाला। उन्होंने किसी को असंतुष्ट नहीं होने दिया। कोई व्यक्ति ऐसा नहीं था, जो यह कह सके—मेरा विकास नहीं हुआ, मैंने कुछ नहीं सीखा। वह एक ऐसा स्वर्णिम युग था, जिसमें न कोई भिखारी था, न कोई गरीब था और न कोई अमीर था। उस समय सवा सोलह-आना समाजवाद था। कल्पना करें—जिस युग में पूर्ण समाजवाद विकास पर था, उस युग की व्यवस्थाएं कितनी सुन्दर और सुदृढ़ रही होंगी! आज रामराज्य प्रसिद्धि पा गया। लोग प्रसिद्धि का सूत्र जानते नहीं हैं। यदि हम रामराज्य और ऋषभराज्य का तुलनात्मक अध्ययन करें तो एक नया प्रकाश मिल सकता है। राम को वाल्मीकि मिल गए, राम-राम बन गए। ऋषभ को कोई वाल्मीकि नहीं मिला। जिस दिन ऋषभ को कोई वाल्मीकि मिल जाएगा, ऋषभराज स्थापित हो जाएगा।

## धर्म तीर्थ का प्रवर्तन

हिन्दुस्तान में दो परम्पराएं बहुत पुरानी हैं—श्रमण परंपरा और वैदिक परम्परा । कौन कितनी पुरानी है ? कौन पहले है और कौन बाद में ? यह आज भी अनुसंधान का विषय बना हुआ है । जो बहुत पुरानी होती है, वह अच्छी होती है और जो नई होती है, वह अच्छी नहीं होती, यह व्याप्ति ठीक नहीं है । एक नई परंपरा बहुत तेजस्वी और बहुत श्रेष्ठ हो सकती है । पुरानी परम्परा तेजस्वी और श्रेष्ठ नहीं भी हो सकती । पुराना होना या नया होना श्रेष्ठता का मापदण्ड नहीं है । फिर भी ऐतिहासिक दृष्टि से यह ज्ञातव्य अवश्य होता है कि पुराना कौन है और नया कौन ?

### भगवान् ऋषभ : श्रमण परम्परा

श्रमण परम्परा बहुत प्राचीन है, इसमें कोई संदेह नहीं है । ऐतिहासिक काल, प्रागैतिहासिक काल—ये अतीत को जानने के दो कोण हैं । इतिहास की सामग्री—पुरातत्त्व, भूखनन, सिक्के आदि-आदि के आधार पर इतिहासकाल माना जाता है । उससे जो भी अतीत है, वह प्राग्-ऐतिहासिक काल है ।

महावीर इतिहास पुरुष हैं, पार्श्वनाथ भी इतिहास पुरुष हैं । उससे आगे इतिहास की वह सामग्री प्राप्त नहीं है, जिसके द्वारा उसकी ऐतिहासिकता की कसौटी की जा सके । जैन धर्म का शेष सारा अतीत प्राग्-ऐतिहासिक काल की सीमा में आता है । प्रश्न होता है—जैन धर्म का प्रवर्तन कब हुआ ? क्या महावीर ने जैन धर्म का प्रवर्तन किया ? तीर्थंकर आदिकर होता है । तीर्थंकर किसी का अनुयायी नहीं होता । कोई तीर्थंकर किसी तीर्थंकर का अनुयायी नहीं है । महावीर पार्श्व के अनुयायी नहीं हैं, पार्श्व ऋषभ के अनुयायी नहीं हैं । सब आदिकर हैं । प्रश्न हुआ—प्रत्येक तीर्थंकर आदिकर होता है तो तीर्थंकर चौबीस क्यों ? चौबीस तीर्थंकरों की एक श्रृंखला क्यों ? ऐसा क्यों माना गया ? यह आज भी अनुसंधान का विषय है ।

सब स्वतंत्र हैं, आदिकर हैं । इस दृष्टि से महावीर भी प्रवर्तक हैं । किन्तु जैन धर्म का सबसे पहले प्रवर्तन किसने किया ? इस प्रश्न की खोज में हम यात्रा करते-करते उस युग में पहुंच जाते हैं जिस युग में युगलों का युग समाप्त होता है

और समाज का युग प्रारम्भ होता है। समाज के उस आदिम युग में भगवान् ऋषभ ने सबसे पहले जैन धर्म का प्रवर्तन किया। केवल जैन धर्म का ही नहीं, समग्र श्रमण धर्म का प्रवर्तन भगवान् ऋषभ ने किया। जो परम्परा भगवान् ऋषभ द्वारा स्थापित की गई, उस परम्परा का नाम है श्रमण परम्परा। उस परम्परा में अनेक सम्प्रदाय बने, सांख्य संप्रदाय, बौद्ध संप्रदाय, आजीवक संप्रदाय, आदि-आदि न जाने कितने संप्रदाय विकसित हुए। उनकी संख्या चालीस तक चली गई। उससे अधिक संख्या भी हो सकती है। जितने अवैदिक संप्रदाय थे वे सारे श्रमण परम्परा में थे। उन सारे संप्रदायों की परम्पराओं का प्रवर्तन भगवान् ऋषभ से हुआ है।

### इतिहास फूलों का

राजा ऋषभ एक दिन उद्यान में गए। वहां पुष्प क्रीड़ा हो रही थी, फूलों से खेला जा रहा था। फूलों का इतिहास बहुत पुराना है। आज के वैज्ञानिक इस तथ्य तक पहुंच गए हैं—लगभग चौदह करोड़ वर्ष पूर्व तक यहां फूल खिलते थे। हो सकता है—वैज्ञानिक एक दिन ऋषभ के युग तक पहुंच जाएं। ऋषभ की पुष्पवाटिका अत्यन्त मनोहर थी। बसंत का मौसम था। वृक्ष फलों से लदे हुए थे। लताओं पर फूल खिले हुए थे। विविध प्रकार की क्रीड़ाएं हो रही थीं। ऋषभ का ध्यान उन पर केन्द्रित हुआ। कभी-कभी आदमी गहराई में चला जाता है। ऋषभ को वह अद्भुत क्रीड़ा परिचित-सी लगी। उस पर ध्यान गहराया, ध्यान देते-देते ऋषभ अतीत में चले गए। सारा अतीत उनके सामने साक्षात् प्रस्तुत हो गया। उन्होंने देखा—मैंने यह दृश्य स्वर्ग में देखा था, अमुक स्थान पर देखा था।

### आत्म-मंथन

जब व्यक्ति अपने भीतर में देखना शुरू करता है और अपने जीवन की विविधताओं पर ध्यान केन्द्रित करता है तब वह बदल जाता है। यह रूपान्तरण का बिन्दु है। ऋषभ ने अपना अतीत देखा और उसे देखने के बाद वे विचय में चले गए। वे विचय में गहरे उतरे। उन्होंने गहराई में जाकर अनुभव किया—आज जो फूल खिल रहा है, वह कल मुरझा जाएगा। आज यह बहुत सुन्दर लग रहा है, इसका लाल रंग मन को हर रहा है। कल यही पुष्प कचरा बन जाएगा। यहीं पर कचरे का ढेर लगा हुआ है। जो फूल टूटे हुए पड़े हैं उनका कचरा बन गया है। ये फूल भी टूटकर इसका एक हिस्सा बन जाएंगे। यह क्या? यह कैसा जीवन? ऋषभ इस आत्मचिन्तन में डूबते चले गए, आत्म-मंथन में लीन बन गए। पदार्थ की सारी

स्थितियां उनके सामने प्रत्यक्ष हो गईं। पदार्थ की स्थिति क्या है? पदार्थ क्या है? यह जगत् क्या है? यह किससे बना है? यह किस प्रकार बनता है? यह फूल किस प्रकार विकसित होता है, खिलता है और किस प्रकार मुरझा जाता है?

### पदार्थ : अपदार्थ

इस सारे चिन्तन से ऋषभ के मन में एक भावना जागी—मैंने समाज का निर्माण किया, समाज की व्यवस्थाएं कीं, राज्य की स्थापना की, राजतंत्र का संचालन किया। सब कुछ किया पर अभी भी उसमें अधूरापन है। अगर पदार्थ विकास के साथ त्याग का विकास नहीं होगा तो सारा विकास अधूरा रह जाएगा। ऋषभ के मन में एक प्रश्न खड़ा हो गया, एक नई जिज्ञासा पैदा हो गई। उनके मन में एक नई अन्तःप्रेरणा शुरू हुई—मुझे पदार्थ के साथ अपदार्थ का विकास करना है। पदार्थ और अपदार्थ—दोनों का संतुलन नहीं होगा तो काम ठीक नहीं चलेगा। उन्होंने इस सच्चाई का अनुभव किया। ऋषभ ने अपना शासनकाल में पदार्थ को बहुत विस्तार दिया और यह अनुभव भी कर लिया जहां पदार्थ है वहां विषमताएं जन्मे बिना नहीं रहेंगी।

### विषमता है समस्या

पदार्थ का जगत् विषमताओं का जगत् है। पदार्थ-विकास विषमता पैदा करता है। जो व्यक्ति शक्तिशाली है, वह ज्यादा इकट्ठा करेगा और जो व्यक्ति कमजोर है, वह पीछे रह जाएगा। इस स्थिति में विषमता का होना अनिवार्य है। जैन दर्शन किसी व्यक्ति को सृष्टि का कर्ता नहीं मानता किन्तु जो सृष्टि का कर्ता मानते हैं उनकी दृष्टि से विचार करें तो भी कहा जा सकता है—यदि स्वयं परमात्मा भी आ जाए तो वह इस दुनिया से विषमता को नहीं मिटा सकता। सौ मावर्स जन्म जाएं तो भी इस दुनिया में साम्यवाद नहीं लाया जा सकता, विषमता को मिटाया नहीं जा सकता। विषमता को मिटाना कोरी थोथी कल्पना है मन को झुठा आश्वासन देना है। पदार्थ के जगत् में विषमता को मिटाना कभी संभव नहीं है।

### ऋषभ का निश्चय

ऋषभ ने एक नया मार्ग प्रारंभ करने का निश्चय किया। उन्होंने ऐसा मार्ग प्रवर्तन करने का संकल्प किया, जहां कोई विषमता नहीं है। उनके मानस में यह संकल्प जाग उठा—मुझे त्याग का प्रवर्तन करना है। पुष्पाटिका को मूर्तरूप देने का निश्चय कर ऋषभ राजमहल में आए। उन्होंने अपनी भावना भरत के सामने प्रस्तुत की,

जनता के सामने प्रस्तुत की। कोई नहीं चाहता था—ऋषभ हमें छोड़कर जाएं। भरत नहीं चाहता था, विनीता नगरी का कोई भी नागरिक नहीं चाहता था—ऋषभ का साया, उनकी सुखद छत्रछाया छूट जाए। भरत ने भगवान् ऋषभ से अनुरोध किया—आप हमें इस प्रकार असहाय बनाकर प्रस्थान न करें। जनता ने भी यही निवेदन किया। ऋषभ ने उनकी भावना को स्वीकार नहीं किया। उनका निश्चय दृढ़ था। ...और एक दिन आया—ऋषभ ने भरत, बाहुबली आदि को अपना राज्य सौंप दिया। वे राज्य को छोड़ जंगल की ओर चल पड़े। शहर से प्रस्थान कर ऋषभ विनीता ग्राम के बाहर उद्यान में पहुंचे। उनके साथ न जाने कितनी भीड़ थी! सारी विनीता नगरी उमड़ पड़ी। चार हजार व्यक्ति उनके साथ रहने के लिए चल पड़े। वे पूछ रहे थे—ऋषभ क्यों जा रहे हैं? कहां जा रहे हैं? वे नहीं जानते थे—साधु क्या होता है? उन्होंने न साधु को देखा था और न ही साधु का नाम सुना था। वे कुछ भी नहीं जानते थे, किन्तु कच्छ और महाकच्छ के नेतृत्व में वे ऋषभ के साथ चलने के लिए कटिबद्ध थे।

### नया प्रस्थान

भरत ने कहा—कच्छ! महाकच्छ! आप कहां जा रहे हैं?

कच्छ और महाकच्छ ने कहा—हम भगवान् ऋषभ के साथ जा रहे हैं।

आप वहां क्या करेंगे? आप मत जाइए।

कुछ भी हो, जहां ऋषभ जाएंगे, वहां कच्छ भी जाएगा, महाकच्छ भी जाएगा, हम सब जाएंगे।

चार हजार की फौज ऋषभ के पीछे चल पड़ी। इस दृश्य को देखने से विनीता का कोई नागरिक वंचित नहीं रहा। यह एक नया प्रस्थान था। संभव है—ऋषभ ने वेश भी बदला होगा? उस समय के चित्र को खींचना बड़ा कठिन है। इस चित्र को कैसे खींचा जाए? उस समय भगवान् ने अपना वेश क्या रखा? कैसा वेश रखा? कपड़े रखे तो कितने रखे? किस रंग का कपड़ा पहना? पहली बार क्या किया? यदि ऐसा कोई साधन विकसित हो, जो करोड़ों-करोड़ों वर्ष पूर्व के दृश्यों का फोटो ले सके, उनकी रील दिखा सके तो हमें कुछ पता चल सकता है। अन्यथा उसकी कल्पना ही की जा सकती है।

### आत्म और समता

ऋषभ विनीता नगरी के उद्यान में खड़े हो गये। उनके साथ चार हजार की

फौज खड़ी थी। उनका संकल्प था—जहां ऋषभ रहेंगे, वहीं हम सब रहेंगे। वे चार हजार व्यक्ति ऋषभ के साथ मुनि बन गए, समता धर्म का प्रवर्तन हो गया। समता धर्म में प्रवर्तन का अर्थ है धर्म तीर्थ का प्रवर्तन। श्रमण परंपरा का मुख्य सूत्र है—समता। श्रमण परंपरा और वैदिक परंपरा में मुख्य विभाजक रेखा है—समता। स्थानांग सूत्र में तीन प्रकार के व्यवसाय बताए गए हैं, उनमें एक है सामायिक व्यवसाय। इसका संबंध श्रमण परंपरा से है। समता का एक अर्थ समानता किया जाता है पर यह मूल अर्थ नहीं है। समता का अर्थ है आत्मा और आत्मा का अर्थ है समता। जो आत्मा है, वह सामायिक है और जो सामायिक है वह आत्मा है। आत्मा को स्वीकार किए बिना समता की स्थापना संभव नहीं है। यही एक ऐसा बिन्दु है जहां बात की जा सकती है। जो व्यक्ति आत्मा की भूमिका में नहीं है उसे समता की बात करने का अधिकार ही नहीं है।

### आश्वासन और राजनीति

हमारे सामने दो बिन्दु हैं—एक आत्मा और दूसरा पदार्थ। पदार्थ के जगत् में समता की बात करना राजनीति है। राजनीति में आश्वासन देना होता है। उनमें अगर समता का आश्वासन न दिया जाए तो काम चल नहीं सकता। राजनीति में दिया जाने वाला आश्वासन कितना सच्चा होता है, इसका पता नहीं है, किन्तु एक राजनेता का काम ही आश्वासन देना है।

चुनाव जीतने के लिए राजनेता ने गांव के लोगों को आश्वासन दिया—यदि मुझे जिताया तो गांव में पानी आ जाएगा। राजनेता चुनाव जीत गया पर पानी एक बूंद भी नहीं आया। जब दूसरा चुनाव निकट आया तब नल जरूर लग गये। वह राजनेता फिर चुनाव में खड़ा हुआ। लोगों ने शिकायत की—आपने पिछले चुनाव में कहा था—गांव में पानी आ जाएगा किन्तु अभी तक पानी नहीं आया। राजनेता ने कहा—वही काम चल रहा है। पहले जिताया तो नल लग गया और अब जिताओगे तो पानी आ जाएगा।

राजनीति में ऐसा ही आश्वासन दिया जाता है। कभी-कभी राजनेता बहुत विचित्र आश्वासन भी दे देते हैं।

एक राजनेता ने गांव का दौरा किया। चुनाव का अवसर था। गांव वालों ने कहा—हमारे गांव में श्मशान घाट भी अच्छा नहीं है हम आपको क्या वोट दें? राजनेता बोला—चिंता मत करो। तुम मुझे वोट देकर जिता दो। मैं जीत गया तो हर घर में श्मशान घाट बनवा दूंगा।

## पदार्थ की प्रकृति

आस्वासन राजनीति का धर्म है। जो राजनेता आश्वासन देना नहीं जानता, वह कुशल राजनेता नहीं होता। चर्चिल की भाषा में कुशल-राजनीतिज्ञ वह है जो प्रातः एक बात कहता है, दोपहर में उस बात को बदल देता है और शाम को यह सिद्ध कर देता है कि मैंने जो प्रातःकाल कहा, वह भी ठीक है और जो मध्याह्न में कहा, वह भी ठीक है।

पदार्थ के जगत् में राजनीति भी आएगी, व्यवस्थाएं भी आएंगी, उतार-चढ़ाव और विषमता भी आएगी। यह पदार्थ की प्रकृति है। इसे रोका नहीं जा सकता। पदार्थ के जगत् में इसका होना अनिवार्य है। यह व्याप्ति बन सकती है—जहां-जहां पदार्थ का जगत् वहां-वहां विषमता। जहां जहां विषमता, वहां-वहां पदार्थ का जगत्। हमारा यह अनुमान, यह व्याप्ति कहीं खण्डित नहीं होगी। केवल आत्मा का जगत् ऐसा है जहां समता की बात की जा सकती है।

## पुराना आयाम : नया आयाम

भगवान् ऋषभ ने पदार्थ जगत् को व्यवस्थित कर दिया। पदार्थ की सम्यक् व्यवस्थापना के बाद ऋषभ ने आत्मा या समता का एक नया आयाम प्रस्थापित किया। उन्होंने पुराने आयाम की उत्थापना कर नए आयाम की प्रस्थापना नहीं की। पदार्थ के बिना समाज का काम नहीं चलता। उसकी उत्थापना कैसे की जा सकती है? कुछ व्यक्तियों ने आचार्य भिक्षु से कहा—भीखणजी! आप मूर्ति को उठा रहे हैं, मूर्ति की उत्थापना कर रहे हैं। आचार्य भिक्षु ने तपाक से जवाब दिया—मूर्ति इतनी भारी होती है कि उसे अकेला आदमी उठा नहीं सकता। मैं उसे कैसे उठा सकता हूँ?

## जरूरी है प्रतिपक्ष

ऋषभ ने एक नया आयाम खोला। जगत् दो भागों में विभक्त हो गया—पदार्थ का जगत् और आत्मा का जगत्, स्थूल जगत् और सूक्ष्म जगत्, मूर्त जगत् और अमूर्त जगत्। इन दोनों के बीच संतुलन बनाना होगा। स्थूल और सूक्ष्म, पदार्थ और आत्मा, मूर्त और अमूर्त के संतुलन से ही समस्याएं समाहित होंगी। हमें पदार्थ से कुछ लेना देना नहीं है, यह सोचना सही नहीं है। पदार्थ के बिना व्यक्ति का काम नहीं चलता, जीवन की यात्रा नहीं चलती। यदि हम केवल पदार्थ में उलझे रहे तो समस्याएं उलझती चली जाएंगी। समस्या को सुलझाने के लिए प्रतिपक्ष को खड़ा

करना आवश्यक है। आज यह बहुत वैज्ञानिक बात बन चुकी है—दो प्रतिपक्षों के बिना, दो विरोधी युगलों के बिना विश्व चल नहीं सकता। विज्ञान का विद्यार्थी, विज्ञान के साहित्य को पढ़ने वाला जानता है—कोरा मेटर हो नहीं सकता। अगर मेटर है तो एण्टीमेटर भी है। प्रतिपक्ष के बिना दुनिया का काम नहीं चलता।

### आत्मा मेटर से परे है

लोकतंत्र की कल्पना करने वालों ने बहुत बड़ी सच्चाई को खोजा। लोकतंत्र में पक्ष के साथ विपक्ष का होना जरूरी है। अगर विरोधी दल नहीं है तो लोकतंत्र ठीक नहीं चल सकता। अनेकान्त का सिद्धान्त है—विरोधी युगल का होना अनिवार्य है। उसके बिना व्यवस्था सम्यक् संपादित नहीं हो सकती। आज विपक्ष का काम पक्ष को कोसना मात्र रह गया। वे एक दूसरे के पूरक नहीं हैं। इसलिए वे समस्या को मिटाने में नहीं, उसे उलझाने में, उसका लाभ उठाने में लगे हुए हैं। धर्मास्तिकाय नहीं है तो अधर्मास्तिकाय नहीं हो सकता। धर्मास्तिकाय को अपने अस्तित्व के लिए अधर्मास्तिकाय को स्वीकार करना जरूरी है। धर्मास्तिकाय को अपने अस्तित्व के लिए अधर्मास्तिकाय के अस्तित्व को स्वीकार करना जरूरी है। लोक है तो अलोक का होना जरूरी है। अनेकान्त का यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है, जो व्यवहार में, लोकतंत्र में, आया पर क्रियान्वित नहीं हो सका। पूरकता के स्थान पर झूठा, विरोध करना, एक-दूसरे को गालियां देना, एक-दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करना ही शेष रह गया। यह एक विडम्बना है। अनेकान्त की सार्थक अभिव्यक्ति है—पदार्थ और आत्मा की स्वीकृति। पदार्थ का सिद्धान्त मेटर का सिद्धान्त है। आत्मा मेटर से परे है।

### समाज : असमाज

ऋषभ ने सबसे पहले आत्मा का आयाम खोला। उन्होंने कहा—जहां आत्मा है, वहां समता की बात स्वतः फलित होगी। इस तथ्य को स्वीकार किए बिना आत्मा की बात संभव नहीं बनती। ऋषभ की इस उद्घोषणा से मानव समाज को नया प्रकाश मिला। पदार्थ से अधिक मूल्य त्याग का हो गया। पदार्थ का मार्ग समाज का मार्ग है। धर्म का मार्ग, त्याग का मार्ग, असमाज का मार्ग है। वही समाज अच्छा चल सकता है, जिसमें असमाज होता है। जिस समाज में असमाज नहीं होता, वह समाज अच्छा नहीं चल सकता। इसका अर्थ है—कोरा भोग चल नहीं सकता, कोरी हिंसा और कोरा झूठ चल नहीं सकता। भोग त्याग के सहारे चल रहा है। प्रत्येक



आदमी त्याग कर रहा है। यदि वह त्याग न करे तो उसे एक दिन में ही भयंकर परिणाम भुगतना पड़े। एक व्यक्ति चौबीस घंटा निरन्तर भोग करता चला जाए, चौबीस घंटा निरन्तर खाता चला जाए, चौबीस घंटा निरन्तर पीता चला जाए तो परिणाम क्या आएगा? इससे हम अपरिचित नहीं हैं। भोग त्याग के आधार पर चलता है, पर हम इस तथ्य को नकार देते हैं।

### तीर्थ का प्रवर्तन

भगवान् ऋषभ ने पक्ष के सामने प्रतिपक्ष का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। समाज है तो असमाज का होना जरूरी है। भोग है तो त्याग का होना जरूरी है। पदार्थ है तो अपदार्थ का होना जरूरी है। इसका नाम हो गया—धर्मतीर्थ का प्रवर्तन। जब धर्मतीर्थ का प्रवर्तन होता है तब साधु और साध्वी, श्रावक और श्राविका समाज निर्मित होता है। यह दूसरे नंबर की बात है। यह तीर्थ का मूल अर्थ नहीं है। तीर्थ का मूल अर्थ है—प्रवचन। भगवान् ने जो नया बोध-पाठ दिया, वही तीर्थ का प्रवर्तन हो गया। उपचार से साधु-साध्वियां, श्रावक-श्राविकाएं भी कहलाते हैं। उनके प्रवचन से अनेक व्यक्ति प्रबुद्ध बने, साधु-साध्वी, श्रावक, और श्राविका बने। ये तीर्थ के चार घटक हैं। तीर्थ के प्रवर्तन, समता धर्म के प्रवर्तन से समाज के सामने एक नया आदर्श और एक नई भूमिका प्रस्तुत हो गई।

### ऋषभ की तपोभूमि : हिमालय

भगवान् ऋषभ ने हिमालय पर तप तपा। हिमालय भगवान् ऋषभ की तपोभूमि रही है। वहां उन्होंने बहुत कुछ पाया। आज इतिहास की खोज वहां जा रही है। यह माना जाने लगा है—ऋषभ और शिव दो व्यक्ति नहीं हैं। एक ही व्यक्ति की दो धाराएं बन गईं। एक धारा ने उसका नाम शिव दे दिया और दूसरी धारा में उसका नाम ऋषभ रहा। मूलतः दोनों व्यक्ति एक ही हैं। कुछ वर्ष पूर्व आचार्य श्री धारवाड़ पधारे। हमने धारवाड़ यूनिवर्सिटी को पुरातत्त्व विभाग में ऋषभ की जटाधारी प्रतिमा को देखा। ऋषभ और शिव—इन दो व्यक्तियों की जटाधारी प्रतिमाएं मिलती हैं। ऋषभ की प्रतिमा धारवाड़ में और शिव की प्रतिमा इन्दौर के संग्रहालय में है। कहा जाता है—ऋषभ ने दीक्षा लेते समय केश लुंचन किया। जब चार मुष्टि लुंचन संपन्न हो गया तब इन्द्र ने प्रार्थना की—महाराज ! यह केश-कलाप कितना सुन्दर लग रहा है ! क्या आप इसे भी काट देंगे ? आप इसे ऐसे ही रहने दीजिए। ऋषभ ने इन्द्र की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। उन्होंने एक-मुष्टि केश का लुंचन नहीं किया।

वह केश राशि बढ़ती चली गई और बढ़ते-बढ़ते नीचे तक पहुंच गई ।

### ऋषभ और शिव

ऋषभ की प्रतिमा देखें या शिव की प्रतिमा । दोनों एक समान लगती हैं । इन दोनों में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता । और भी ऐसे अनेक तथ्य हैं जिनके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है—ऋषभ और शिव—ये एक ही व्यक्ति के दो रूप हैं । शिव भी अवैदिक हैं और ऋषभ भी अवैदिक । ऋषभ द्वारा प्रवर्तित समता धर्म जनता के लिए कल्याणकारी हुआ । भगवान् महावीर ने भी उसी धर्म का प्रवर्तन किया । पता नहीं क्या बात है—इतिहास के बाईस तीर्थकर एक ओर दिखाई देते हैं तथा ऋषभ और महावीर—दूसरी ओर दिखाई देते हैं । कहां पहला बिन्दु और कहां अन्तिम बिन्दु ! किन्तु दोनों समान रेखा पर अवस्थित नजर आते हैं । उन्होंने जिस तीर्थ का प्रवर्तन किया, समता धर्म का प्रवर्तन किया, वह आज भी हमारे सामने प्रस्तुत है ।

## जागो ! क्यों नहीं जाग रहे हो ?

स्वतन्त्रता का इतिहास जितना पुराना है, परतंत्रता का इतिहास भी उतना ही पुराना है। दोनों बहुत प्राचीन हैं। अगर प्राचीन होने से कोई बात अच्छी होती तो परतंत्रता भी बहुत अच्छी हो जाती। जब समाज ने करवट ली, अंगड़ाई ली और वह थोड़ा आगे बढ़ा तो उसके दोनों पहलू—स्वतंत्रता और परतंत्रता उजागर हो गए।

एक दिन भरत का राज्याभिषेक महोत्सव मनाया जा रहा था। विजय का महोत्सव था। उसमें बहुत से राजा उपस्थित थे। भरत ने दृष्टि दौड़ाई, चारों ओर देखा—सब राजा प्रस्तुत हैं किन्तु भाई एक भी नहीं है। बड़ी विचित्र स्थिति बन गई। अट्टानवें सगे भाई और बाहुबलि, जो दूसरी माता का पुत्र है। निन्यानवें भाइयों में से एक भी भाई उपस्थित नहीं है। केवल पराए ही पराए। भरत को अटपटा लगा। सब कुर्सियां खाली पड़ी थीं। भरत का मन आहत हुआ। यह क्या ? एक भी भाई नहीं ? भरत के राज्याभिषेक का उत्सव मनाया जा रहा था किन्तु उसे यह उत्सव फीका-फीका लग रहा था। इस उत्सव की ओर उसका ध्यान ही नहीं जा रहा था। उत्सव का समय भी मुश्किल से बीता होगा।

### भरत का संदेश

उत्सव का समय पूरा हुआ। भरत ने अपने मंत्री को बुलाया, अट्टानवें दूतों को बुलाया, उन्हें संदेश दिया—जाओ ! जहां-जहां मेरे भाई हैं उन सबको यह संदेश बता दो। दूत सब राजधानियों में पहुंचे, सब भाइयों को भरत का संदेश दिया। भाइयों ने भरत का संदेश देखा। संदेश में लिखा था—तुम आओ और मेरी अधीनता स्वीकार करो, यहां आकर सेवा करो। अगर तुम राज्य चाहते हो तो ऐसा करो। सबने भरत के संदेश को पढ़कर सोचा—अरे ! यह क्या बात है ? पिता ने सबको विभाग करके राज्य दिया है—यह तुम्हारा राज्य है और यह तुम्हारा राज्य। भरत कौन होता है उसे मांगने वाला और हमारे से सेवा लेने वाला ? वह कौन है हमें अधीन बनाने वाला ? सबके मन में एक विचार पैदा हो गया, एक प्रश्न पैदा हो

गया। उन्होंने कहा—यह भरत का बड़ा अत्याचार है। लगता है—उसे बड़ा अहंकार हो गया है। उसमें अधिकार की भावना जाग गई है। यह राज्य हमारे हिस्से में आया हुआ है। जब पिता सब बेटों को अलग-अलग हिस्सा दे देता है तब एक भाई किस अधिकार से उनका हिस्सा मांगता है। यह कितना बड़ा अन्याय है ! हम इस अन्याय को सहन नहीं करेंगे। भरत राज्य लेना नहीं चाहता पर हमें अनुशासन में रखना चाहता है। हम स्वतंत्र हैं। उसका अनुशासन क्यों मानें। हम कैसे उसकी अनुशासना को स्वीकार करें ? हम अधीन क्यों बने ?

### सेवा का फल : भरत का सामर्थ्य

उस समय भाइयों के मन में जो विकल्प पैदा हुए उनका सुन्दर चित्रण किया गया है—हम भरत को शास्ता क्यों मानें ? क्या भरत में यह शक्ति है कि जब मौत आएगी तो वह हमें बचा लेगा ? क्या भरत में यह शक्ति है कि जब बुढ़ापा आएगा तो वह हमें बूढ़ा नहीं बनने देगा ? क्या भरत में यह शक्ति है कि कोई बीमारी आएगी तो वह हमें बीमारी से बचा लेगा ? जैसे भरत के मन में लालसा जाग रही है वैसे ही हमारे मन में भी अपने अधिकार को बढ़ाने और पाने की लालसा जाग जाए तो क्या भरत में यह क्षमता है कि वह हमारी इस बढ़ती हुई तृष्णा को मिटा दे ! कौन-सी विशेष बात है भरत में ? क्या सेवा का ऐसा फल मिलेगा, जो मौत को न आने दे, बीमारी को न आने दे, तृष्णा और बुरे भावों को न बढ़ने दे। यह सेवा का फल है। अगर भरत ऐसा फल देने में समर्थ नहीं है तो हम क्यों जाएं उसके पास ? जैसा वह आदमी है वैसे ही हम आदमी हैं। हम सब समान हैं। भरत कौन सेवा लेने वाला है और हम कौन सेवा देने वाले हैं। सेवा-लेने और देने का अधिकार तब होता है जब कोई विशेष बात हो, विशिष्टता हो।

ईदृक् सेवाफलं दातुं न चेद् भरत ईश्वरः।

मनुष्यभावे सामान्ये, तर्हि कः केन सेव्यताम् ॥

### सेवा और समस्या

एक शाश्वत सत्य का उद्गान हुआ है—वही आदमी सेवा ले सकता है जिसने विशेषता प्राप्त कर ली है और उसी व्यक्ति को दूसरा व्यक्ति सेवा दे सकता है, जिसमें यह अनुभूति जागे—अमुक व्यक्ति में यह विशेषता है। इस स्थिति में सेवा लेना और सेवा देना—दोनों संगत बन जाते हैं। अगर विशेषता नहीं है, कोई अतिरिक्तता नहीं है, सब समान हैं, हर आदमी समान है तो कौन किसको सेवा दे और कौन

किसकी सेवा ले। यह बात समझ में आ जाए तो सेवा लेने वाला अपने आपको ऊंचा बनाएगा, सेवा देने वाला अपने आप झुकेगा। जहां डंडे के बल पर सेवा ली जाती है, वहां हिंसा और प्रतिक्रिया चलती है। एक बड़ा प्रश्न है। हड़ताल, घेराव, तालाबंदी आदि क्यों हो रहे हैं? इस समस्या को हम इस सत्य के सन्दर्भ में देखें— जहां अतिरिक्तता नहीं है और सेवा ली जाती है, वहां समस्या पैदा होती है।

एक मंत्री ने अपने चौकीदार को लताड़ दिया। चौकीदार क्या करे? उसे मंत्री की डांट सुननी पड़ी किन्तु जैसे ही मंत्री इधर-उधर गया, कुछ चौकीदार आपस में मिले। उन्होंने कहा—कैसा जमाना आया है! एक अस्थायी आदमी एक स्थायी कर्मचारी को लताड़ रहा है। इसे खुद के स्थायित्व का भरोसा नहीं है। आज आया है और कल चला जाएगा। कैसा निकम्मा आदमी है। इसका अपना कुछ भी नहीं है। बस कुर्सी पर आकर बैठ जाता है और हमें डांटता रहता है। क्या इसे पता है अपने स्थायित्व का?

### संघर्ष समाप्ति का उपाय

जहां राज्य कर्मचारियों के मन में अपने अधिकारी के प्रति आदर का भाव नहीं होगा वहां संघर्ष निरन्तर चलेगा। संघर्ष को मिटाने का कोई उपाय नहीं है। संघर्ष तभी मिट सकता है जब व्यक्ति में अतिरिक्तता पैदा हो जाए, विशेषता पैदा हो जाए। व्यक्ति ऐसे गुणों का अर्जन करे जिससे अधीन रहने वाले अधीन रहना चाहे किन्तु किसी को अधीन रखना न चाहे। शिष्य गुरु के अधीन रहना चाहता है, किन्तु गुरु उसे अधीन रखना नहीं चाहते। भगवान् महावीर ने गौतम को कुछ दिनों के लिए अलग भेज दिया। उस समय उन्हें कैसा लगा? यदि महावीर में विशिष्टता नहीं होती तो गौतम महावीर के साथ रहना क्यों चाहते? क्या गौतम कम विद्वान थे? वे क्यों महावीर के पास रहते? वे महावीर से अलग रहना ही नहीं चाहते थे, किन्तु किसलिए? उनके रहने का आकर्षण था—महावीर की विशिष्टता। यह एक सुन्दर सिद्धांत है। जब तक इस सिद्धांत को नहीं अपनाया जाएगा तब तक जागतिक संघर्षों को कभी समाप्त नहीं किया जा सकेगा।

### भाइयों का निर्णय

भरत के भाइयों ने, भगवान् ऋषभ के पुत्रों ने, अपने चिन्तन में एक ऐसे शाश्वत सत्य को प्रगट कर दिया, जो आज की ज्वलंत समस्या का समाधान है। जब व्यक्ति अपने साथियों, सहयोगियों को अधीन रखना चाहेगा तब संघर्ष का वातावरण बनेगा।

संघर्ष को मिटाने का उपाय है—अतिरिक्तता का अर्जन किया जाए, किसी विशेषता को पाया जाए। ऋषभ के पुत्रों को लगा—भरत में कोई विशेषता नहीं है। हम क्यों जाएं इसके पास? अगर भरत जबर्दस्ती राज्य लेना चाहता है तो क्या हम उससे कम हैं? हम भी उसी बाप के बेटे हैं, उससे कम नहीं हैं। अगर वह लड़ना चाहे तो हम भी तैयार हैं। उन्होंने पुनः सोचा—ऐसा करना अच्छा नहीं लगेगा। लोग कहेंगे—भाई-भाई लड़ रहे हैं। दोनों ओर समस्या है, क्या करें? एक उपाय उनके मानस में उभर आया। उन्होंने निर्णय लिया—पहले भगवान् के पास चलें। उनकी क्या आज्ञा है? जो उनकी आज्ञा होगी, वही काम कर लेंगे। यदि वे कहेंगे—लड़ो तो जरूर लड़ेंगे। वे कहेंगे—मत लड़ो तो नहीं लड़ेंगे। जैसा कहेंगे वैसा ही करेंगे। अपनी समस्या के समाधान के लिए सारे भाई भगवान् के दर्शनार्थ चल पड़े। भगवान् उस समय हिमालय में थे। अष्टापद पर भगवान् का समवशरण हो रहा था। अष्टापद हिमालय की एक शाखा है और वह भगवान् ऋषभ की तपोभूमि रही है। भगवान् का विहार अधिकांशतः उसी प्रदेश में हुआ। अभी कुछ वर्ष पहले आचार्य विद्यानंदजी मिले। उन्होंने बताया—हिमालय में भगवान् ऋषभ का मंदिर भी मिल गया है।

### सबकी एक समस्या है

अट्टानवें भाई ऋषभ के चरणों में पहुंचे। वे वंदना कर बोले—भगवान् ! आज हम आपकी उपासना के लिए नहीं आए हैं। हम एक समस्या लेकर आए हैं। आप हमारी समस्या का समाधान करें।

भगवान् ने कहा—क्या समस्या है? सबकी समस्या एक ही है या अलग-अलग है।

सबकी एक ही समस्या है।

क्या समस्या है?

भंते ! आपने हमें राज्य दिया किन्तु भाई भरत हमारे राज्य को छीनना चाहता है। यह समस्या है। आप बताएं—हम क्या करें? आप क्या परामर्श देते हैं? आपकी क्या आज्ञा है। जो आपकी आज्ञा होगी, हम वही करेंगे।

### भगवान् का प्रस्ताव

भगवान् ने देखा—बड़ी विकट समस्या है। यह कैसे कहा जाए—राज्य को छोड़ दो। यह भी कैसे कहा जाए—लड़ो। क्या करना चाहिए? उस समय एक कृश्ल मनश्चिकित्सक की भांति भगवान् ने उनके चिन्तन को नया मोड़ दिया।

भगवान् ने पूछा—तुम राज्य को भोग रहे हो ।

हां ! बड़े आनन्द से राज्य चला रहे हैं । कोई कठिनाई नहीं है ।

अरे ! जरा सोचो ! जो राज्य मैंने दिया है अगर उससे बड़ा राज्य दूं तो क्या तुम तैयार हो देने के लिए ?

हां ! बड़ा राज्य मिले तो कौन तैयार नहीं है ?

आज मैं बड़ा राज्य देने की बात सोच रहा हूं । इससे बहुत बड़ा राज्य दूंगा, जिसकी कोई सीमा नहीं है, कोई अन्त नहीं है । वह असीम और अनन्त है । क्या उसे तुम लेना चाहोगे ?

क्यों नहीं लेगें ! कृपा है, आप अभी देना चाहते हैं तो हम तैयार हैं ।

लो सुनो पहले ? मैं तुम्हें एक कहानी सुनाता हूं ।

सुनाएं ।

कहानी सब सुनाते हैं । भगवान् भी कहानी सुनाते थे ।

### तृष्णा : उपमा

भगवान् बोले—एक था अंगारकारक, अंगारा बनाने वाला । वह जंगलों में जाता, लकड़ियां काट-काट कर इकट्ठी करता और फिर उन्हें जलाकर अंगारे बनाता । ज्येष्ठ का महीना था । अत्यन्त भीषण गर्मी थी । तेज धूप तप रही थी, लूएं चल रही थीं । वह लकड़ी काटने के लिए चला । साथ में एक बोतल पानी था । मध्याह्न में प्यास लगी । उसने पानी पिया । बोतल खाली हो गई । थोड़ी देर बाद पुनः प्यास लगी, पानी खत्म हो चुका था । वह प्यास से अकुलाने लगा । वह वृक्ष की ठंडी छांव में बैठकर विश्राम करने लगा । वृक्ष की शीतल छाया में उसे नींद आ गई ।

व्यक्ति जिस बात को मन में लेकर सोता है, वही बात उसके अवचेतन मन में उभरने लगती है । उसे सपना आया—मुझे बहुत प्यास लगी है । मेरे पास पानी खत्म हो गया है । मैं प्यास बुझाने के लिए एक कुएं पर गया । मैं कुएं का सारा पानी पी गया फिर भी प्यास नहीं बुझी । उसके बाद मैं तालाब पर गया, तालाब का सारा पानी खाली कर दिया । नदी पर गया, नदी का सारा पानी पी गया, फिर भी प्यास नहीं बुझी । आखिर समुद्र पर गया और समुद्र का सारा पानी मैंने आत्मसात् कर लिया फिर भी प्यास मिटी नहीं । अगस्त्य ऋषि ने तीन चुल्लू में समुद्र का पानी पिया था, मैंने एक ही बार में समुद्र को सुखा डाला । उसका सपना आगे बढ़ा—मैंने अनुभव किया—अभी भी बहुत तेज प्यास लगी हुई है । क्या करूं ? मैं रेगिस्तान

में चला आया। रेगिस्तान का कुआं बहुत गहरा था। उसमें बहुत ठंडा पानी था। मैं कुएं पर पहुंच गया पर पानी निकालने की समस्या प्रस्तुत हो गई। मेरे पास निकालने का कोई साधन नहीं था। इधर-उधर घास के पूले पड़े थे। एक रस्सी से घास के पूलों को बांधकर कुएं में लटकाया, उन्हें पानी से गीला किया, उनको ऊपर खींचा। जो थोड़ा बहुत पानी उन पूलों के साथ आया, उसे निचोड़ा, सोचा—‘प्यास बुझ जाए।’ मैं वह बूंद-बूंद पानी पीने लगा ?

### सम्बोधन : रूपान्तरण

भगवान् ऋषभ ने इस स्वप्न कथा का उपसंहार करते हुए कहा—जिसकी प्यास समुद्र का पानी पीने से नहीं बुझी, नदी, तालाब और झीलों का पानी पीने से नहीं बुझी, क्या उसकी प्यास इन घास के पूलों से टपकने वाली बूंदों से बुझ जाएगी।

सब एक साथ बोल उठे—भगवन् ! नहीं बुझेगी, कभी नहीं बुझेगी।

भगवान् ऋषभ ने कहा—अरे ! तुमने इस जन्म में कितने सुख भोगे हैं ? तुम देवलोक में भी गए हो। वहां पर तुमने प्रचुर भोगों का सेवन किया है फिर भी तुम्हारी तृष्णा नहीं बुझी। क्या छोटा-मोटा राज्य पाकर तुम्हारी तृष्णा बुझ जाएगी ?

पुत्रों ने कहा—नहीं बुझेगी।

तुम इस छोटे राज्य को छोड़ो। मैं तुम्हें बड़ा राज्य दे रहा हूं।

भगवान् के इस कथन से सारे भाई हर्षोत्फुल्ल हो उठे। उनकी चेतना का रूपान्तरण हो गया। वे जिस समस्या को लेकर आए थे, वह समस्या समस्या नहीं रही। उनकी चेतना समाहित हो गई।

भगवान् ने कहा—जागो ! तुम क्यों नहीं जाग रहे हो ? क्यों नहीं समझ रहे हो ?

**सबुज्झह किं न बुज्झह संबोहि खलु पेच्च दुल्लहा ।**

**णो हूं वणमंति राइओ, णो सुलभं पुणरावि जीवियं ॥**

पदार्थ का मिलना सुलभ है, राज्य का मिलना सुलभ है पर समझ का मिलना, संबोधि का मिलना दुर्लभ है। ये रातें बीतती चली जा रही हैं। जीवन भी घटता चला जा रहा है। तुम समझो ! जागो !

### समाधान सनातन प्रश्न का

भगवान् के इस संबोधन से वे सारे उद्बुद्ध हो गए, समस्या का समाधान हो गया। वे पूरी स्वतंत्रता में आ गए। अधीनता का प्रश्न समाप्त हो गया। अट्टानवें



भाई भगवान के चरणों के अधीन बन गए, मुनि बन गए। भगवान की अधीनता मिल जाए इससे बड़ी स्वतंत्रता क्या होगी? भगवान की अधीनता का मतलब ही है स्वतंत्रता। कहीं कहीं ऐसी स्थिति में स्वतंत्रता का मतलब अधीनता या परतंत्रता बन जाता है। वे सब स्वतंत्र बन गए, समस्या से मुक्ति पा गए।

यह स्वतंत्रता और परतंत्रता का प्रश्न आज का प्रश्न नहीं है। यह सनातन प्रश्न है किन्तु इसका समाधान वही व्यक्ति कर सकता है जिसने कोई अतिरिक्तता अर्जित की है, विशेषता प्राप्त की है। दूसरों को पराधीन बनाने का संकल्प नहीं किन्तु दूसरों के मन में उसके अधीन बनने का संकल्प जाग जाए, यह एक सुन्दर समाधान है और वह समाधान ऋषभ के पुत्रों को मिला। समाज के आदिमकाल में इस प्रश्न का सुन्दर समाधान खोजा गया। आज के समाज के अग्रणी व्यक्ति, समाजशास्त्री, राजनीतिज्ञ या अध्यात्मविद् इस सूत्र को पकड़ सके और विशेषता के द्वारा अधीन बनाने की बात कर सके तो शायद सारी दुनिया में जो भयंकर संघर्ष की स्थिति चल रही है, आग की ज्वालाएं फूल रही हैं, उनमें एक जलसिंचन होगा, आग को बुझाने का मौका मिलेगा।

## भरत और बाहुबली

मनुष्य के जीवन और उसके व्यक्तित्व की एक शब्द में परिभाषा की जाए तो वह है भावों का जीवन। मनुष्य का जीवन भावात्मक है। कहा जाता है—व्यक्ति को धन प्यारा होता है ! पत्नी, भाई और पिता प्यारा होता है, किन्तु यह दो नम्बर का सत्य है। एक नम्बर का सत्य है—आदमी को अपना भाव सबसे ज्यादा प्रिय है। वह भाव से जीता है। किसी व्यक्ति को अहंकार ज्यादा प्यारा है। वह अपने अहंकार के लिए पिता को छोड़ देता है, पुत्र और पत्नी को छोड़ देता है। किसी व्यक्ति को लोभ बहुत प्यारा है। किसी को क्रोध प्रिय है। प्रिय है अपना भाव। प्रत्येक आदमी अपने भावों के साथ जीता है। यदि मनुष्य को भावों का पुतला कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। जिसका जैसा भाव, उसका वैसा जीवन—यह एक व्याप्ति बनाई जा सकती है।

### समस्या चक्र प्रवेश की

हम इसे एक घटना के सन्दर्भ में देखें—भरत के मन में अधिकार का भाव जागा। अधिकार या लोभ की भावना ने उसके मन में साम्राज्य-विस्तार की आकांक्षा को जन्म दिया। बाहुबली के मन में अहंकार का भाव प्रबल बना। उसने भाई की अधीनता के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया। भरत और बाहुबली का युद्ध इतिहास की एक महान् घटना है।

सेनापति सुषेण चक्रवर्ती भरत की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने निवेदन किया—महाराज ! चक्र आयुधशाला में प्रवेश नहीं कर रहा है।

चक्रवर्ती भरत ने कहा—मैंने सबको जीत लिया, अब कोई शेष नहीं है। फिर चक्र भीतर क्यों नहीं जा रहा है ? हमने राज्याभिषेक का उत्सव मना लिया फिर भी चक्र प्रविष्ट क्यों नहीं हो रहा है ?

महाराज ! नहीं जा रहा है।

बोलो ! कौन बचा है ?

सुषेण मौन हो गया।

मौन क्यों हुए? बोलो! चक्र न जाने का कारण क्या है?

महाराज! मैं क्या बोलूँ?

उसने सोचा—बोलूँ तो मुसीबत और न बोलूँ तो मुसीबत। मनुष्य कभी-कभी ऐसी दोहरी समस्या में फंस जाता है।

तुम्हें कारण बताना होगा।

महाराज! मैं जो कहूँगा, वह आपको प्रिय नहीं लगेगा, इसलिए अच्छा यही है कि मैं मौन रहूँ।

नहीं! तुम जो कहना चाहते हो, कहो।

सुषेण फिर भी मौन रहा। उसने सोचा—मैं दो भाइयों के बीच क्यों फसूँ। इनका क्या होगा। इनकी लड़ाई में बेचारे सैनिक संत्रस्त होंगे। मौन रहना ही अच्छा है।

चक्रवर्ती भरत ने बहुत आग्रह किया। अंततः सुषेण को कहना पड़ा—महाराज! आपने सबको जीत लिया पर आपका भाई बाहुबली अभी तक अविजित है, अपराजित है। उसे कोई जीत नहीं सकता। वे आपका शासन मानने को तैयार नहीं हैं और चक्र आयुधशाला में प्रवेश करने को तैयार नहीं है। यही समस्या है और यही कारण है।

यह सुनकर चक्रवर्ती का माथा ठनका।

### संबंध : एक चित्र

भरत और बाहुबली में परस्पर अगाध प्रेम था। उनके प्रेम की कोई सीमा नहीं थी। दोनों बचपन से साथ रहे, साथ खेले, अनेक क्रीड़ाएँ कीं। बाहुबली ने भरत के साथ अपने संबंधों का बहुत सुन्दर चित्रण किया है—एक दिन वह था, जब मैं एक क्षण भी भाई के बिना नहीं रहता था। आज पिता ने मुझे स्वतंत्र बना दिया। अब कहां भाई रहा और कहां मैं रहा। फिर भी एक दिन भी ऐसा नहीं जाता, जिस दिन भाई की स्मृति न हो।

जब अधिकार का भाव प्रबल होता है, अहंकार का भाव प्रबल होता है, तब संबंध धरे रह जाते हैं, गौण बन जाते हैं। अपने भावों के सामने दूसरा व्यक्तित्व टिकता ही नहीं है। अधिकार का भाव प्रबल बना, संबंध की चेतना सो गई। भरत ने बाहुबली को अपने अधीन बनाने का निश्चय कर लिया। उसने दूत को बुलाकर निर्देश दिया—तुम तक्षशिला जाओ और बाहुबली को मेरा संदेश दो।

दूत भरत का संदेश लेकर तक्षशिला की राजधानी बहली प्रदेश में पहुंचा। वह बाहुबली के सामने प्रस्तुत हुआ। उसने अपना परिचय देते हुए कहा—मैं अयोध्या से आया हूँ। चक्रवर्ती भरत ने मुझे भेजा है। मैं आपकी सेवा में उनका संदेश लेकर आया हूँ।

बाहुबली ने दूत से पूछा—बताओ ! मेरे भाई भरत कैसे हैं ? सुखी तो हैं ? कोई कठिनाई तो नहीं है ? क्यों भेजा है तुम्हें/ किसी शत्रु ने आक्रमण तो नहीं कर दिया ? अगर मुसीबत में हैं तो मैं अभी चलने को तैयार हूँ।

### संबंध : दूसरा चित्र

यह सुन दूत मन-ही-मन हंस रहा था। उसने कहा—महाराज ! वहां क्या मुसीबत हो सकती है ? भरत सबको जीतने वाले चक्रवर्ती सम्राट् हैं। भरत का जो राज्याभिषेक उत्सव मनाया गया, उसमें सारे राजा उपस्थित हुए पर आप नहीं आए।

बाहुबली बोले—मुझे बुलाना चाहते हैं ?

दूत बोला—भरत चक्रवर्ती हैं। उनके पास आपको जाना चाहिए। वे आपके बड़े भाई हैं। उनका शासन आपको स्वीकार करना चाहिए।

दूत के इस कथन से वातावरण बदल गया। भरत का यह संदेश —बाहुबली आए और मेरे शासन को स्वीकार करे—सुनते ही बाहुबली के चेहरे का रंग बदल गया। बाहुबली अहंकार और गुस्से से भर उठे। उन्होंने कहा—बाहुबली किसका शासन स्वीकार करे ? शासन एक ऋषभ का हो सकता है और किसी का शासन नहीं हो सकता। भरत मेरा बड़ा भाई है। मैं उसका छोटा भाई हूँ। इससे आगे और कोई बात नहीं है। हमारे बीच भाई-भाई का संबंध है। शास्ता और शासित का संबंध कभी संभव नहीं है।

### पहला संबंध भावों से है

बहुत लम्बा संवाद चला। दूत ने कुछ बातें बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत कीं। उससे बाहुबली के अहंकार को चोट पहुंची। अहंकार का नाग फुफकार उठा। बाहुबली ने भरत की आज्ञा को अस्वीकार करते हुए कहा—जाओ ! भरत से कह दो। बाहुबली तुम्हारा शासन स्वीकार नहीं करेगा। या तो मौन होकर बैठ जाओ अन्यथा युद्ध भूमि में हमारा मिलन होगा। युद्ध का निमंत्रण दे दिया। बाहुबली अपनी सेना के साथ युद्ध के लिए चल पड़ा। दोनों भाई युद्ध-भूमि में आमने-सामने हो गए। युद्ध का शंखनाद बज उठा।

आदिम युग का पहला युद्ध प्रारम्भ हो गया और वह दो भाइयों के बीच लड़ा गया। यह सच्चाई पुष्ट हो गई—भाई भाई का संबंध नम्बर दो की सच्चाई है। व्यक्ति का पहला संबंध अपने भावों से है, एक ओर अधिकार के भाव ने भाई के संबंध को गौण बना दिया तो दूसरी ओर अधिकार का भाव भाई-भाई के संबंध पर हावी हो गया।

### देववाणी : नया प्रस्ताव

कहा जाता है—बहुत भयंकर युद्ध चला। युद्ध करते-करते बारह वर्ष बीत गये। कोई नतीजा नहीं निकला। सारा विश्व इस समस्या से आक्रांत हो गया। अनुश्रुति है—उस समय देववाणी हुई। संभव है—उस समय देववाणी आत्मा की वाणी होती होगी। उस समय देववाणियां बहुत बचा देती थीं। देववाणी में कहा गया—आप क्यों लड़ रहे हैं? आप दोनों भाई हैं। ऋषभ के पुत्र हैं। परस्पर युद्ध करना अच्छा नहीं है। युद्ध बन्द होना चाहिए।

भरत और बाहुबली दोनों ने कहा—युद्ध बंद नहीं होगा। पुनः देववाणी हुई—हमारी पहली शर्त है—युद्ध बंद हो। यदि यह प्रस्ताव मान्य नहीं है तो हमारी शर्त है—दोनों सेनाओं में परस्पर युद्ध बन्द हो। आप दोनों भाइयों के बीच लड़ाई है, दूसरों को बीच में क्यों मारा जाए? भरत बाहुबली को झुकाना चाहता है और बाहुबली झुकना नहीं चाहता। यह संघर्ष का मूल बिन्दु है और यह आप दोनों भाइयों से जुड़ा हुआ मुद्दा है। इसलिए आप सेना को युद्धभूमि से हटा दें और दोनों भाई आपस में लड़ें। जो जीतेगा वही शासक बन जाएगा।

इस तर्क को दोनों भाइयों ने स्वीकार कर लिया। सारी सेना एक ओर हट गई। युद्ध भूमि में केवल दोनों भाई आमने-सामने खड़े थे।

### युद्धमंच : रंगमंच

आज का युद्ध कुछ दूसरे प्रकार का होता है। पहले युद्ध सैनिकों के बीच होता था और उसमें सैनिक मरते थे किन्तु आज युद्ध केवल सैनिकों के बीच ही नहीं लड़ा जाता। आज के युद्ध में हजारों-लाखों निर्दोष नागरिक मारे जाते हैं। आज युद्ध का कोई निश्चित स्थल नहीं है। पूरा देश युद्ध-स्थली बन जाता है। इससे केवल एक देश नहीं, सम्पूर्ण विश्व प्रभावित होता है। एक अणुबम कहीं छोड़ा जाता है किन्तु उसके विकिरण, अणुधूलि पूरे देश में छा जाती है। आज युद्ध की मर्यादाएं समाप्त हो गईं, सीमाएं टूट गईं। युद्ध का कोई धर्म नहीं रहा, आचार संहिता नहीं रही। यह

एक बर्बरतापूर्ण कार्य बन गया, क्रूरता से भरा अमानवीय कृत्य बन गया ।

प्राचीन समय में युद्ध की सीमा को स्वीकार किया गया । घोषणा की गई—कोई सैनिक नहीं लड़ेगा । सब सैनिक अपने शस्त्र भूमि पर गिरा दें । इस घोषणा के बाद सैनिकों ने शस्त्र डाल दिए । युद्ध-मंच रंग-मंच में बदल गया । सब प्रेक्षक बन गए । हिंसक युद्ध का अहिंसक युद्ध की दिशा में प्रस्थान हो गया ।

### दृष्टि युद्ध

चार प्रकार के युद्ध की घोषणा हो गई—दृष्टियुद्ध, शब्दयुद्ध, मुष्टियुद्ध और दंडयुद्ध ।

सारे सैनिक इस घोषणा को सुनकर उछल पड़े । उन्होंने सोचा—जिनको लड़ना है, वे लड़ें । हमें क्या लेना देना है युद्ध से । हमें इससे कोई मतलब नहीं है । बाहुबली जीत जाए तो हमें कुछ मिलने वाला नहीं है और भरत जीत जाए तो भी कुछ मिलने वाला नहीं है । हम सैनिक हैं, सैनिक ही रहेंगे । मिलेगा बाहुबली को, मिलेगा भरत को । जिन्हें कुछ पाना है, उन्हें ही लड़ना चाहिए, हम दोनों भाइयों का युद्ध देखेंगे, उनका पराक्रम देखेंगे, उनके युद्ध के साक्षी बनेंगे, द्रष्टा बनेंगे ।

भरत और बाहुबली के बीच पहला युद्ध—दृष्टियुद्ध प्रारंभ हुआ । यह निश्चित था—जो आंख को पहले झपकाएगा, वह हार जाएगा और जो आंख को नहीं झपकाएगा, वह जीत जाएगा । भरत ने अपनी तीव्र दृष्टि बाहुबली पर आक्षिप्त की । बाहुबली ने भरत पर अपनी तीव्र दृष्टि का प्रक्षेप किया । दोनों तीव्र दृष्टि से अपलक एक दूसरे को देखते रहे । घंटो बीत गए, प्रहर बीत गए । किसी की भी पलकें नहीं झपकीं । मानों त्राटक सिद्ध हो गया । कुछ प्रहर बीतने के बाद भरत की आंखें थक गईं, भरत की आंखें झुक गईं । उस समय भी कोई रेफरी—निर्णायक रहा होगा । उसने घोषणा की—भरत की आंखें पहले मुंद गई हैं । भरत पराजित हो गया, बाहुबली विजेता घोषित हो गया ।

### शब्दयुद्ध : मुष्टियुद्ध

अपनी हार से भरत लज्जित हुआ, संकुचित हुआ । उसने सोचा—इस हार का बदला शब्दयुद्ध जीतकर ले लूंगा । अब शब्दयुद्ध की बारी थी । भरत ने भयंकर सिंहनाद किया । आकाश-पाताल एक हो गए, समुद्र में ज्वार-भाटा आ गया, स्थितियां विकराल बन गईं, सारा विश्व प्रकंपित हो उठा । लोग भयभीत हो उठे । जैसे ही बाहुबली ने सिंहनाद किया, भरत का स्वर दब गया, मंद हो गया । भरत इस बार

भी पराजित घोषित हुए ।

तीसरे प्रकार का युद्ध—मुष्टियुद्ध शुरू हुआ । भरत ने पहल की । उसने बाहुबली की छाती पर तेज मुक्का मारा । बाहुबली चीख उठे, पीड़ा से भर उठे । किन्तु तत्काल संभल गए । अब बाहुबली ने अपना मुक्का ताना और भरत पर तीव्र प्रहार किया । भरत बाहुबली के प्रहार को नहीं सह सके, भूमि पर गिर पड़े, मूर्च्छित हो गए । भरत को पुनः पराजय का मुंह देखना पड़ा ।

### भरत की व्यथा

भरत का मन व्यथा से भर गया । उसने सोचा—मैंने क्यों मुसीबत मोल ली ? मैं अपने घर में आराम से बैठा था, बहुत बड़ा राज्य मुझे प्राप्त था । छोटे भाई से न लड़ता तो क्या होता ? चक्र आयुधशाला में नहीं जाता, बाहर खड़ा रहता तो मुझे क्या मुसीबत थी ? मैंने क्यों सिर दर्द मोल लिया ? बचपन में भी बाहुबली कितना बलवान् था ! मुझे याद है—बाल्यकाल में एक बार बाहुबली ने मुझे गेंद की तरह आकाश में उछाल दिया । जब मैं पुनः गिरने लगा तब मेरे पिता ऋषभ ने कहा—अरे ! क्या कर रहे हो ? यह तुम्हारा बड़ा भाई है । बाहुबली ने पिता की बात मानकर मुझे तत्काल अपने हाथों में झेल लिया ।

भरत को बचपन के संस्मरण याद आने लगे—एक दिन भगवान् ऋषभ ने हमें खाने के लिए गन्ना दिया । मैं उसे अकेला खाने लगा । बाहुबली ने मुझसे ईख मांगा । मैंने इन्कार कर दिया । बाहुबली ने मेरे हाथ से जबरदस्ती छीन लिया । मैं मुंह ताकता रह गया । ऐसे अनेक संस्मरण भरत की आंखों के सामने तैरने लगे । लेकिन युद्ध के सिवाय उसके पास अब और कोई विकल्प नहीं था ।

### दंडयुद्ध

युद्ध का चौथा विकल्प था दंडयुद्ध । भरत ने अपना दंड उठाया । उस दण्ड से चारों तरफ आग की लपटें निकल रही थीं, अग्नि ज्वालाएं फूट रही थीं । भरत ने उस दंड से बाहुबली पर तीव्र प्रहार किया । बाहुबली घुटने तक जमीन में धंस गए । इस प्रकार से बाहुबली को भरत की शक्ति का अहसास हुआ । उन्होंने अपनी शक्ति का प्रयोग किया और बाहर निकल आए । अब बाहुबली ने अपना दंड संभाला । उसे जोर से घुमाते हुए भरत के सिर पर तीव्र वेग से प्रहार किया । भरत का मुकुट गिर गया, चक्रवर्तित्व का चिह्न उछल कर बहुत दूर जा गिरा । चक्रवर्ती भरत कंठ तक भूमि में धंस गए । मात्र इतना-सा दिखाई दे रहा था—कोई आदमी है । वे पूरी

समाधि की दशा में चले गए ।

भरत को चारों युद्धों में पराजित घोषित कर दिया गया । बाहुबली विजयी बन गए । भरत अपनी पराजय से आकुल-व्याकुल हो गए । उन्होंने सोचा—मेरी इतनी बड़ी सेना है, चौदह रत्न हैं । मैंने छः खण्ड को अपने भुजबल से जीता है । मैं इस पराजय को सहन नहीं करूंगा । मैंने संकल्प किया था—शस्त्र का प्रयोग नहीं करूंगा पर समय आने पर सारे संकल्प टूट जाते हैं । वे भावावेश से भर गए, संभल नहीं सके ।

### भरत का भावावेश : शर्त का उल्लंघन

आदमी का संकल्प तब तक चलता है, जब तक उसका भाव संतुलित रहता है । जब व्यक्ति का भाव असंतुलित बनता है तब सारी सीमाएं, सारी मर्यादाएं टूट जाती हैं । भावावेश में व्यक्ति को कुछ पता नहीं चलता । वह अपना भान भूल जाता है । भरत ने सुदर्शन चक्र हाथ में लिया, उसे उठाया, घुमाया और उसे बाहुबली के शिरच्छेद के लिए फेंक दिया ।

चारों ओर कोलाहल मच गया ।

आकाश में स्थित देवता और धरती पर खड़े मनुष्य बोल उठे—यह अन्याय है, शर्त का उल्लंघन है ।

चक्रवर्ती भरत ने उनकी बात को अनसुना कर दिया ।

सुदर्शन चक्र अत्यन्त भयंकर शस्त्र होता है । दुनिया में सबसे ज्यादा शक्तिशाली अस्त्र ब्रह्मास्त्र माना जाता है । सुदर्शन चक्र उससे भी अधिक शक्तिशाली था । वह आग की लपटें उगलता जा रहा था । उसे देख सब घबरा उठे, सोचा—अब बाहुबली का काम समाप्त हो जाएगा । बाहुबली अडोल और अप्रकंप खड़े थे । उनका आत्मबल/मनोबल अजेय बना हुआ था । उन्होंने कहा—मेरी मुष्टि के एक प्रहार से यह चक्र चूर-चूर हो जाएगा ।

चक्र बाहुबली के पास पहुंचा । उसने मारने की बजाय बाहुबली की प्रदक्षिणा शुरू कर दी । भरत ने सोचा—आज तो कोई बुरा दिन ही आ गया है । जो भी कार्य करता हूँ वह विपरीत ही होता है । भरत घबरा उठा—चक्र बाहुबली के पास चला गया, अब क्या होगा ? भरत इस चिन्तन से कांप उठा । किन्तु चक्र बाहुबली की प्रदक्षिणा कर भरत के पास वापस आ गया । भरत ने चक्र को पुनः पाकर सुख की सांस ली ।



## संबोधन

भरत के इस कृत्य को देख बाहुबली भयंकर आक्रोश से भर गए। उन्होंने सोचा—यह भाई है? यह भाई नहीं है, दुश्मन है। जो सीमा और मर्यादा का अतिक्रमण करे, उसको उसका फल मिलना चाहिए। उनका आवेश प्रबल बन गया। बाहुबली बोले—मैं अभी दौड़ कर जाता हूँ, भरत के सिर पर प्रहार करता हूँ—भरत मेरा क्या करेगा? बाहुबली मुक्का तानकर भाई पर प्रहार करने के लिए सन्नद्ध हो उठे। और बातें अनहोनी हो सकती हैं पर बाहुबली का मुक्का खाली नहीं जाएगा। कहा जाता है—उस समय आकाश में ध्वनि हुई। भरत-बाहुबली महाकाव्य में उसका सुन्दर चित्रण किया गया है—

अयि बाहुबले ! कलहाय बलं, भवतोऽभवदायति चारु किमु ?  
 प्रजिघांसुरसि त्वमपि स्वगुरुं, यदि तद्गुरुशासनकृत् क इह ?  
 कलहं समवेहि हलाहलकं, यमिता यमिनोप्ययमा नियमात् ।  
 भवती जगती जगतीशसुतं, नयते नरकं तदलं कलहैः ॥  
 नृपः ! संहर संहर कोपमिमं, तव येन पथा चरितश्च पिता ।  
 सर तां सरणिं हि पितुः पदवीं, न जहत्यनघास्तनयाः क्वचन ॥  
 धरणी हरिणीनयना नयते, वशतां यदि भूप ! भवन्तमलम् ।  
 विधुरो विधिरेष तदा भविता, गुरुमाननरूप इहाक्षयतः ॥  
 तब मुष्टिमिमां सहते भुवि को, हरिहेतिमिवाधिकघातवतीम् ।  
 भरताचरितं चरितं मनसा, स्मर मा स्मर केलिमिव श्रमणः ॥  
 अयि ! साधय साधय साधुपदं, भज शान्तरसं तरसा सररम् ।  
 ऋषभध्वजवंशनभस्तरणे ! तरणाय मनः किल घावतु ते ॥

हे बाहुबली ! तुम्हारा बल युद्ध के लिए प्रयुक्त हो रहा है। क्या यह भविष्य के लिए शुभ होगा? यदि तुम भी अपने बड़े भाई भरत को मारना चाहते हो तो इस संसार में बड़े भाई की आज्ञा मानने वाला दूसरा कौन होगा?

तुम उस कलह को हलाहल विष के समान जानो, जिसका आश्रय लेकर संयमी मुनि निश्चय से असंयमी हो जाते हैं। यह पूजनीया पृथ्वी राजपुत्र को नरक में ले जाती है, इसलिए इसके लिए किए जाने वाले ऐसे कलह से हमें क्या?

राजन् ! तुम अपने इस क्रोध का संहरण करो, संहरण करो। जिस मार्ग पर तुम्हारे पिता ऋषभ चले हैं, उसी मार्ग पर तुम चलो। सुपुत्र अपने पिता के मार्ग को

कभी नहीं छोड़ते ।

राजन् ! यदि यह भूमि रूपी सुन्दरी तुमको वश में कर लेती है तो बड़ों को सम्मान देने की यह विधि मूलतः विधुर हो जाएगी ।

इन्द्र के वज्र की तरह प्रचंड प्रहार करने वाली तुम्हारी इस मुष्टिका को संसार में कौन सहन कर सकता है ? तुम भरत द्वारा आचीर्ण चरित्र को मन से भी याद मत करो, जैसे श्रमण पूर्वकृत काम-क्रीड़ा को याद नहीं करता ।

राजन् ! तुम मुनिपद की साधना करो, साधना करो । तुम शीघ्रता से सरस शान्तरस का आसेवन करो । हे ऋषभदेव के वंशरूपी आकाश के सूर्य ! तुम्हारा मन आत्म कल्याण के लिए अग्रसर हो ।

**मैं क्या करूँ**

बाहुबली ने इस ध्वनि को सुना—

आप क्रोध मत करो । आप विजयी हैं, शक्तिशाली हैं, ऋषभ के पुत्र हैं । आप अपने भाई की तरफ ध्यान मत दो, अपने पिता की ओर देखो । आप अपने भाई के मार्ग का अनुसरण मत करो, आप अपने पिता के मार्ग का अनुसरण करो । हम मानते हैं—भरत ने जो किया, वह उचित नहीं है । आप उसकी ओर ध्यान न देकर शान्तरस का पान करें । आप अपनी इस मुट्ठी को खोलें, कल्याण के मार्ग पर प्रस्थान करें ।

बाहुबली ने सोचा—सही बात कही जा रही है, भाई पर मुक्का उठाना अच्छा नहीं है । भाई को मारूंगा तो एक कलंक लग जाएगा । भविष्य में हमारा उदाहरण देते हुए कहा जाएगा—ऋषभ के पुत्र ऐसे लड़े थे । बाहुबली ने अपने बड़े भाई को मारा था । यह मेरा नहीं, ऋषभ का अपमान होगा । अब भाई को मारना नहीं है । किन्तु जो मुक्का उठ गया, वह नीचे नहीं जा सकता । मैं क्या करूँ ?

कहा जाता है—जब देवता को गुस्सा आता है और वह सामने वाले व्यक्ति को मारने की स्थिति में नहीं होता है तब वह कहीं दूर एकान्त में जाकर लात का प्रहार करता है, सारी भूमि को कंपा देता है । वह इस प्रकार अपने गुस्से का रेचन करता है, उसे उपशान्त करता है ।

बाहुबली का मुक्का उठा था अहंकार के साथ, भयंकर क्रोध के साथ । 'मैं क्या करूँ' इस प्रश्न की गहराई में जाते ही बाहुबली को समाधान उपलब्ध हो गया । भरत को मारने के लिए उठा मुक्का स्वयं के सिर पर गिरा । बाहुबली ने उस मुष्टि

से स्वयं का केश लुंचन कर लिया ।

### युद्ध से अयुद्ध की ओर प्रस्थान

चक्रवर्ती भरत इस दृश्य को देखकर विस्मयाभिभूत हो उठे । उन्होंने सोचा—यह क्या हो गया ? बाहुबली के इस प्रस्थान के प्रति प्रणत हो गए । बाहुबली ने अपने विजय को प्रदीप्त बना दिया । जहां त्याग होता है वहां विजय होती है, सुख और शांति का साम्राज्य विस्तार पाता है । अगर बाहुबली त्याग नहीं करते तो प्रलय हो जाती । दो में से एक को त्याग करना होता है । बाहुबली का त्याग अहंकार का उदात्तीकरण है— युद्ध से अयुद्ध की ओर प्रस्थान है, विजय को महाविजय में बदलने का पराक्रम है ।

यह भरत और बाहुबली के चरित्र की संक्षिप्त चर्चा है । उसके आदि बिन्दु को बहुत अच्छा नहीं कहा जा सकता । भाई लड़े, इस बात को शोभास्पद नहीं कहा जा सकता, किन्तु इस चरित्र की जो परिणति है, वह वस्तुतः एक निदर्शन है । भावावेश में भाई लड़ भी लेते हैं पर वे कैसे संभल जाते हैं, कैसे बदल जाते हैं ? इसका उदाहरण है भरत और बाहुबली का जीवन चरित्र । इस चरित्र का संदेश है—त्याग के द्वारा ही समस्या का समाधान किया जा सकता है । यह महान् चरित्र व्यक्ति के भीतर त्याग की चेतना जगाने में सक्षम बने, विश्व की समस्याओं को समाधान का नया आयाम दे, यही अभीष्ट है ।

## निर्वाणवाद के प्रवक्ता : भगवान् महावीर (१)

### निर्वाण की परिभाषा

दीपमालिका का दिन भगवान् महावीर के निर्वाण का दिन है। भगवान् महावीर निर्वाणवादी थे। गंधर्वों ने उनकी स्तुति इस भाषा में की—निव्वाणवादीणिह णायपुत्ते—ज्ञातपुत्र महाजीर निर्वाणवादियों में श्रेष्ठ हैं। प्रश्न होता है—निर्वाण क्या है ?

आत्मा से परमात्मा बनना, इसका नाम है निर्वाण। यह भी एक प्रश्न है—महावीर को श्रेष्ठ माना गया ? ईश्वरवादी दर्शनों के अनुसार जो व्यक्ति साधना करके आगे जाता है, उसका निर्वाण नहीं होता, वह परमात्मा नहीं बनता। किंतु वह ईश्वर में विलीन हो जाता है। नदी का पानी चला और वह समुद्र में विलीन हो गया। अब वह नदी का पानी नहीं रहा, समुद्र का एक अंश बन गया। मोक्ष में अस्तित्व विलीन हो जाता है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार व्यक्ति ब्रह्म का अंश था, वह ब्रह्म में विलीन हो गया। यह विलय का सिद्धांत है ईश्वरवादी की दृष्टि से ईश्वर में विलय और अद्वैतवादी की दृष्टि से ब्रह्म में विलय होता है। भगवान् बुद्ध निर्वाणवादी हैं। उनका निर्वाण है बुझ जाना। इसका अर्थ है—जो संतति चल रही थी, वह समाप्त हो गई किन्तु संतति की समाप्ति से क्या बचा ? इसकी कोई परिभाषा बौद्ध दर्शन से प्राप्त नहीं है। जो जन्म मरण का चक्र था, वह मिट गया, बुझ गया, संतति समाप्त हो गई। इससे आगे निर्वाण की कोई परिभाषा प्राप्त नहीं है।

### परमात्मा होने का अर्थ

महावीर ने निर्वाण को सम्यक् भाषा प्रदान की। निर्वाण का मतलब है—आत्मा से परमात्मा बनना। निर्वाण का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। व्यक्ति अपने उस स्वतंत्र अस्तित्व में अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति और अनंत आनन्द का अनुभव करता है। परमात्मा होने का अर्थ स्वतंत्र सत्ता का होना है, स्वयं ईश्वर बन जाना है, ईश्वर में विलीन होना नहीं है। निर्वाण का ऐसा सिद्धान्त किसी भी निर्वाणवादी दार्शनिक ने नहीं दिया। इसलिए यह कहना सार्थक हो गया—निर्वाणवादियों में ज्ञातपुत्र श्रेष्ठ हैं। निर्वाण बुझ जाने का सूत्र नहीं है, अस्तित्व के मिट जाने का नाम

नहीं है। निर्वाण में विलीन होने का प्रश्न नहीं है। निर्वाण है अपने समय अस्तित्व को अभिव्यक्त कर लेना, प्रकट कर लेना, आत्मा को परमात्मा बना लेना।

### भक्त से भगवान् बनने का दर्शन

आचार्य मानतुंग के भक्तामर स्तोत्र में निर्वाण की यही परिभाषा प्राप्त है। उन्होंने लिखा—प्रभो ! जो आपकी भक्ति करता है वह आपके समान बन जाता है, इसमें आश्चर्य क्या है। जो भगवान् अपने भक्त को अपने समान न बनाए, यह आश्चर्य की बात हो सकती है। उस आराध्य और परमात्मा से हमें क्या, जो भक्त को अपने समान न बनाए।

नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ, भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।  
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा, भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥

भगवान् महावीर को यह बात कभी मान्य नहीं रही—भगवान् सदा भगवान् बना रहे और भक्त सदा भक्त ही बना रहे। महावीर ने निर्वाण का जो सिद्धान्त दिया, उसका अर्थ है—भक्त भगवान् बन सकता है। आज प्रातःकाल अमेरिकी छात्रों से चर्चा चल रही थी। आचार्यवर ने चर्चा के प्रसंग में कहा—हम भक्त को सदा भक्त बने रहने देना नहीं चाहते। हम नहीं चाहते—एक हाथ सदा देने वाला बना रहे और एक हाथ सदा लेने वाला बना रहे। हम चाहते हैं—दोनों हाथ ऊपर उठ जाएं, भक्त भगवान् बन जाए। भक्त से भगवान् बनाने वाले सिद्धान्त का नाम है—निर्वाणवाद।

### ईश्वर का पता

आत्मवाद और निर्वाणवाद—दोनों एक हैं, दो नहीं हैं। निर्वाणवाद का मतलब है आत्मा को जानना, आत्मा को देखना और आत्मा में रहना। एक आचार्य ने लिखा—आत्मा को जानने का मतलब है सम्यग् ज्ञान। आत्मा को देखने का मतलब है सम्यग् दर्शन। आत्मा में रमण करने का अर्थ है सम्यग् चारित्र और यही योग है।

स्वामी विवेकानन्द से एक व्यक्ति ने प्रार्थना की—आप मुझे ईश्वर से मिला दें। विवेकानन्द बोले—ठीक है ! मैं तुम्हारी प्रार्थना उन तक पहुंचा दूंगा। तुम अपना पता मुझे दे दो। उस व्यक्ति ने अपना पता (एड्रेस) लिख कर दे दिया। विवेकानन्द ने पूछा—क्या यह तुम्हारा अपना पता है ? वह व्यक्ति इस प्रश्न से सकपका गया। उसने कहा—महाराज ! मुझे उसका पता नहीं है। विवेकानन्द बोले—जिस व्यक्ति को अपने आपका पता नहीं होता उससे ईश्वर कभी मिलता ही नहीं है। तुम पहले

अपना पता करो और उसके बाद ईश्वर से मिलने की बात करो ।

**अबाध होना निर्वाण है**

जिस व्यक्ति को अपना पता है, उसे ईश्वर अपने आप मिल जाएगा । उसे कहीं जाने की जरूरत ही नहीं है । महावीर ने सबसे ज्यादा इस बात पर बल दिया—अपनी आत्मा को देखो, अपनी आत्मा को जानो और अपनी आत्मा में रहो । यही निर्वाण है । निर्वाणवाद मात्र अलौकिक कथा नहीं है, वह बहुत गहरा सिद्धांत है, व्यावहारिक सिद्धांत है ।

केशी-गौतम को संवाद में निर्वाण का महत्त्वपूर्ण स्वरूप मिलता है—

निव्वाणं ति अबाहं ति, सिद्धि लोगगमेव य ।

खेमं सिवं अणाबाहं, तं चरंति महेसिणो ॥

निर्वाण का एक अर्थ है—किसी भी बाधा का न होना । प्रत्येक आदमी बाधा का जीवन जीता है । बाधाओं, विघ्नों को पार कर जाना, उन्हें जीत लेना निर्वाण है । आदमी बाधाओं और विघ्नों को मिटाने के लिए विनायक की पूजा करता है । यह प्रार्थना करता है—हे विनायक ! विघ्नों को दूर कर दो । न जाने कितनी विनायक की मूर्तियां बनी हुई हैं और वे कितने घरों में प्रतिष्ठित हैं ! इसका कारण है—आदमी बाधा को सहन करना नहीं चाहता, उसे मिटाना चाहता है । निर्वाण का मतलब है अबाध हो जाना । यदि हम आत्मा की पवित्रता के द्वारा ऐसी स्थिति का निर्माण कर सकें, ऐसे वातावरण का निर्माण कर सकें, जहां कोई बाधा न हो तो वहां निर्वाण की बात संभव बन जाती है ।

**अव्याबाध सुख**

निर्वाण का एक अर्थ—अव्याबाध सुख । हमारा ज्ञान, आनंद, शक्ति और सुख अव्याबाध बन जाए । हम पूरे समाज या मानव जाति का विश्लेषण करें, इहलोक या परलोक का विश्लेषण करें, देवताओं या नारकों के जीवन का विश्लेषण करें, हमें पता चलेगा—अव्याबाध सुख कहीं नहीं है । यह माना गया—देवता सदा सुखी रहते हैं, नारक सदा दुःख भोगते हैं और मनुष्य कभी सुख भोगता है, कभी दुःख भोगता है । यह एक सामान्य कल्पना है । क्या देवताओं का सुख अव्याबाध है ? उनका सुख भी अव्याबाध नहीं है । उनके शारीरिक दुःख भी आता है, मानसिक दुःख भी आता है । देवताओं में छीना-झपटी भी चलती है । वे एक दूसरे की संपत्ति चुरा लेते हैं । उनमें संघर्ष चलता है । हम छोटे देवों की बात छोड़ दें । सौधमेन्द्र

और ऐशानेन्द्र जैसे देवताओं में भी सीमा विवाद चलता है। उसे सुलझाने के लिए तीसरे लोक का इन्द्र आता है। वह दोनों के बीच मध्यस्थता करता है। वह आदेश देता है—लड़ो मत। युद्ध बंद करो। मैं सीमा का निर्धारण करता हूँ। यह देवताओं की स्थिति है।

### सुख के तीन प्रकार

अव्याबाध सुख है कहां? जहां पदार्थ है, ममत्व है, मूर्च्छा है, वहां अव्याबाध सुख हो नहीं सकता। तत्त्वार्थभाष्य में सुख का बहुत सुन्दर विश्लेषण किया गया है। उसमें तीन प्रकार के सुख माने गए हैं—

- स्थूल पदार्थ सापेक्ष सुख
- सूक्ष्म पदार्थ सापेक्ष सुख
- पदार्थ निरपेक्ष सुख

रोटी की जरूरत पड़ी, रोटी मिल गई और सुख हो गया। पानी की अपेक्षा थी, पानी मिल गया और सुख हो गया। यह स्थूल पदार्थ सापेक्ष सुख है। सूक्ष्म पदार्थ सुख में स्थूल पदार्थ की जरूरत नहीं होती। सूक्ष्म पुद्गल मिले और सुख पैदा हो गया। ऐसा सुख ईर्यापथिकी क्रिया में होता है, देवताओं को होता है। वहां स्थूल पदार्थ का भोग नहीं होता। केवल सूक्ष्म पदार्थ, सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण होता है और तृप्ति मिल जाती है। उच्चकोटि के देवताओं में जब काम चेतना जागती है तब वे पदार्थ का भोग नहीं करते। वे संकल्प करते हैं और उससे उन्हें तृप्ति मिल जाती है। इसे सूक्ष्म पदार्थ सापेक्ष सुख कहा गया है। स्थूल पदार्थ सापेक्ष सुख और सूक्ष्म पदार्थ सापेक्ष सुख—दोनों पदार्थ सापेक्ष हैं, पदार्थ प्रतिबद्ध सुख हैं। पदार्थ निरपेक्ष सुख केवल आत्मा से होने वाला सुख है। अव्याबाध सुख वही हो सकता है जो केवल आत्मा से उपजता है। जिस सुख में कोई बाधा नहीं पहुंचा सकता, जिसमें न पदार्थ की जरूरत है, न सूक्ष्म पुद्गल स्कंधों की जरूरत है, वह आत्मिक सुख है, अव्याबाध सुख है, पदार्थ निरपेक्ष सुख है।

### महावीर : निर्वाण के प्रवक्ता

भगवान् महावीर ने निर्वाण के सिद्धान्त को व्यापक रूप में प्रस्तुत किया। निर्वाण का एक स्वरूप है सिद्धि। निर्वाण का अर्थ है सारी सिद्धियों का प्राप्त होना व्यक्ति को लोकाग्र में ऐसा स्थान मिलता है, जहां प्रदूषण नहीं है, पर्यावरण की समस्या नहीं है, कोई उपद्रव नहीं है, अकल्याण नहीं है। निर्वाण प्राप्त व्यक्ति उस स्थान में

पहुंचता है, जहां न अकाल है, न सर्दी है, न गर्मी है। वह शरीर और मन से रहित होता है इसलिए उसके शारीरिक और मानसिक कष्ट भी नहीं होता। सदा क्षेम, शिव और कल्याण से ओत:प्रोत है निर्वाण।

महावीर के दर्शन में निर्वाणवाद का जो स्वरूप मिलता है, जो विशद व्याख्या प्राप्त होती है, वह और कहीं प्राप्त नहीं है। आज सबसे ज्यादा बल इस बात पर दिया जाता है कि कथनी-करनी बराबर होनी चाहिए। निर्वाण का अर्थ है कथनी-करनी का एक हो जाना। यथाख्यात चारित्र निर्वाण की एक अवस्था है। इन सारे संदर्भों के आधार पर यह कहा जा सकता है—निर्वाणवाद के प्रबल प्रवक्ता भगवान् महावीर हैं। निर्वाण का सिद्धांत देकर उन्होंने हमारे वर्तमान जीवन को उपकृत किया है भावी जीवन को उपकृत किया है। उनकी वंदना निर्वाणवाद के महान् प्रवक्ता की वंदना है।



## निर्वाणवाद के प्रवक्ता : भगवान् महावीर (२)

प्रवृत्ति की बाती, निवृत्ति के तैल से जले  
प्रकाश फैले, धुआं न निकले।

### समस्या प्रवृत्ति से

निर्वाणवादी दर्शन या निर्वाणवादी जीवन शैली का मुख्य सूत्र है निवृत्ति। प्रश्न हुआ—जीवन कैसे चले ? कहा गया—प्रवृत्ति से। किन्तु प्रवृत्ति निवृत्ति से जुड़ी हुई होनी चाहिए। या तो केवल निवृत्ति का जीवन हो और यदि प्रवृत्ति का जीवन हो तो उसकी पृष्ठभूमि में निवृत्ति का सूत्र होना चाहिए। निर्वाणवादी जीवन शैली का अर्थ है—निवृत्ति शून्य कोई भी प्रवृत्ति न हो। केवल प्रवृत्ति आज समस्या बनी हुई है। जिस प्रवृत्ति की पृष्ठभूमि में निवृत्ति नहीं है, संयम नहीं है, उस प्रवृत्ति ने एक ओर अणुबम का निर्माण किया है, दूसरी ओर अमीरों का निर्माण किया है, तीसरी ओर निरंकुश शासकों का निर्माण किया है। केवल प्रवृत्ति से ये सारी समस्याएं पैदा हुई हैं।

### विकास की परिभाषा

प्रवृत्ति का निरोध संभव नहीं है। जहां जीवन है वहां प्रवृत्ति होगी। प्रवृत्ति को छोड़ा नहीं जा सकता। महावीर ने निर्वाण का जो दर्शन दिया, उसका निष्कर्ष है—प्रवृत्ति हो पर उसकी पृष्ठभूमि में निवृत्ति रहे। निवृत्ति के दीवट पर प्रवृत्ति का दीप जले और वह निवृत्ति के तैल से जले। इस स्थिति में प्रवृत्ति संहारक नहीं होगी, निरंकुश नहीं होगी, समाज में अव्यवस्था फैलाने वाली नहीं होगी। हरबर्ट स्पेन्सर ने विकास की एक परिभाषा की। वह परिभाषा डार्विन के विकासवाद के विरोध में मानी जाती है। स्पेन्सर का मत है—एकता से अनेकता की ओर, सरलता से जटिलता की ओर, अव्यवस्था से व्यवस्था की ओर जाने का जो उपक्रम है, उसका नाम है विकास।

### विकास की पृष्ठभूमि में अविकास

यह विकास की सही परिभाषा है। जहां भौतिक विकास का प्रश्न है, वहां यह

परिभाषा संगत प्रतीत होती है। यौगलिक युग में सरलता थी। जैसे ही राजतंत्र का युग आया, जटिलता शुरू हो गई। सरलता से जटिलता की ओर प्रस्थान होने लगा। जैसे ही कर्मयुग प्रारम्भ हुआ, एकता अनेकता का रूप लेने लगी, अनेक वर्ग विकसित हो गए। यौगलिक युग में कोई व्यवस्था नहीं थी, सब कुछ स्वतःचालित था। उस युग की समाप्ति के साथ-साथ व्यवस्था का क्रम शुरू हो गया। यह विकास की प्रक्रिया है। निर्वाण अविकास की प्रक्रिया है। प्रवृत्ति विकास का सूत्र है। निवृत्ति अविकास का सूत्र है। जिस विकास की पृष्ठभूमि में अविकास नहीं होता, वह विकास खतरनाक बन जाता है। इन तीन बातों पर ध्यान केन्द्रित होना आवश्यक है—अनेकता की पृष्ठभूमि में एकता बनी रहे, जटिलता की पृष्ठभूमि में सरलता बनी रहे, व्यवस्था की पृष्ठभूमि में अव्यवस्था बनी रहे।

अव्यवस्था का मतलब है सहज जीवन, यौगलिक जीवन। ऐसी भूमिका का निर्माण, जिसमें व्यवस्था की जरूरत ही न रहे। उपशान्त क्रोध, उपशांत मान, उपशांत माया और उपशांत लोभ की स्थिति में इस भूमिका का निर्माण होता है। इस स्थिति में व्यवस्था अकिंचित्कर बन जाती है, उसकी कोई अपेक्षा नहीं होती। यह है प्रवृत्ति के नीचे रहा हुआ निवृत्ति सिद्धान्त। यह ठीक चलता है तो जीवन ठीक चलता है।

### निवृत्ति : निर्वाण का मूल सूत्र

महावीर के निर्वाण का मूल सूत्र है निवृत्ति। उसे निष्कर्म कर्म कहें, अनासक्त योग कहें या मानसिक शान्ति—तीनों परस्पर जुड़े हुए हैं। मानसिक शान्ति कब आती है? जब निष्काम भावना, अनासक्त भावना विकसित होती है तब मानसिक शान्ति घटित होती है। निष्काम भाव का विकास तब संभव बनता है जब निवृत्ति का सूत्र व्यक्ति के हाथ लगता है। प्रत्येक व्यक्ति अपेक्षा रखता है—व्यक्ति एवं समाज में अनासक्ति का भाव जागे, निष्काम भावना का विकास हो। यह निवृत्ति का सिद्धान्त है। व्यक्ति कहता है—निष्काम सेवा करो, कामना मत करो। वस्तुतः यह निर्वाण का दर्शन है। बहुत बार आदमी तात्पर्य को समझ नहीं पाता। जहां मूल बात को सूक्ष्मता से नहीं पकड़ा जाता वहां सही अर्थ को जानना कठिन हो जाता है। बड़ी से बड़ी प्रवृत्ति करने वाला, प्रवृत्ति का समर्थन करने वाला व्यक्ति भी यह अपेक्षा रखता है—समाज निष्काम सेवा वाला बने, समाज उदात्त चिन्तन वाला बने, समाज अच्छा बने, उसमें बुराइयां और अपराध न पनपे। यदि निवृत्ति नहीं है, संयम नहीं है, निष्काम चेतना नहीं है तो ये सारी बातें संभव नहीं बन पाएंगी।

## शान्तिपूर्ण जीवन का रहस्य

सब मानसिक शान्ति चाहते हैं। आज मानसिक तनाव बढ़ रहा है, भावनात्मक तनाव बढ़ रहा है। व्यक्ति चाहता है—तनाव न हो, जीवन शान्तिपूर्ण रहे। उसकी एक आकांक्षा है—शस्त्रों के निर्माण पर रोक लगे। आज शस्त्रों पर रोक लगाने के संदर्भ में कितने आंदोलन चल रहे हैं। दो राष्ट्र—सोवियत रूस और अमेरिका—शस्त्र बनाने में अग्रणी है। ये राष्ट्र शस्त्र विरोध की संधि में अगुआ बनने के लिए लालायित हैं। इसका अर्थ है—वे अतीत की ओर लौट रहे हैं, प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर लौट रहे हैं। इसका निष्कर्ष है—निर्वाणवादी जीवन शैली के बिना प्रवृत्ति का जीवन भी अच्छा नहीं चलता। जो व्यक्ति अच्छा जीवन जीना चाहता है, जो समाज या राष्ट्र स्वस्थ और शान्तिपूर्ण जीवन का रहस्य जानना चाहता है, उसे निर्वाणवादी जीवन शैली को अपनाना होगा।

## समिति और गुप्ति

जैन दर्शन में दो शब्द बहुत प्रचलित हैं—गुप्ति और समिति। गुप्ति का अर्थ है निवृत्ति। समिति का अर्थ है प्रवृत्ति किन्तु उनके साथ भी निवृत्ति जुड़ी हुई है। यदि व्यक्ति केवल प्रवृत्ति करता चला जाता है तो वह विचारशून्य बन जाता है, प्रवृत्ति का विवेक खो देता है। आज भी बहुत सारे दार्शनिक चिन्तक और विचारक कहते हैं—निवृत्तिवादी दर्शन ने समाज को अकर्मन्य बना दिया। यह तर्क सही नहीं लगता। यदि गहराई में जाकर देखें तो लगेगा—वे स्वयं निवृत्ति का समर्थन करते चले जा रहे हैं और उसे स्वीकार भी नहीं कर पा रहे हैं। वे अपनी भाषा से स्वयं अनजान बने हुए हैं। निवृत्तिवाद का समर्थन करते हुए भी उसे नहीं समझ पा रहे हैं।

## प्रवृत्ति निवृत्ति शून्य न हो

हम निर्वाणवादी जीवन शैली को समझें और यह सकल्प लें—‘हम प्रतिदिन आधा घंटा निवृत्ति में बिताएंगे, कायोत्सर्ग में बिताएंगे।’ इससे हमें अपनी बहुत सारी समस्याओं का समाधान उपलब्ध होगा। इस प्रयोग से जीवन शैली बदलेगी। आधा घंटा न शरीर की वृत्ति, न मन की प्रवृत्ति और न वाणी की प्रवृत्ति। यह समस्याओं के चक्र को तोड़ने का महत्त्वपूर्ण उपाय है। हम इस बात पर भी ध्यान केन्द्रित करें—हमारी कोई भी प्रवृत्ति, निवृत्ति शून्य न हो। हम प्रत्येक प्रवृत्ति से पहले सोचें—इसके पीछे हमारी निवृत्ति है या नहीं, समय है या नहीं। हम खाते समय सोचें—खाना जरूरी है पर इसके साथ संयम जुड़ा हुआ है या नहीं? चलते समय

सोचें—चलने के साथ संयम जुड़ा हुआ है या नहीं। 'संयमः खलु जीवनम्' यह निर्वाणवाद का सूत्र है, जीवन का सूत्र है। यदि यह सूत्र हमारी समझ में आ जाए, हम इसे जीवनगत बना पाए तो हम निर्वाणवादी शैली का जीवन जी सकेंगे, प्रवृत्ति के साथ निवृत्ति का संतुलन साध सकेंगे, अपने जीवन को मंगलमय और कल्याणकारी बना पाएंगे। यह दीपावली का पवित्र दिन, भगवान् महावीर का निर्वाण दिन हमारे जीवन की पवित्रता का दिन बन जाएगा। दीपावली का अभिनन्दन, दीपावली को मनाने का उपक्रम, दीपावली का आगमन, भगवान् महावीर का निर्वाणोत्सव— हमारे जीवन को एक नई दिशा दे पाएगा, स्वस्थ एवं शान्तिपूर्ण जीवन का रहस्य करा पाएगा।

## मृत्यु का दर्शन : समाधिमरण

### शिष्य की जिज्ञासा

शिष्य गुरु की सन्निधि में पहुंचा। वह विनम्र वंदना कर बोला—गुरुदेव ! मैंने सुना है—जीवन और मृत्यु दो हैं। यदि वे दो हैं तो बीच में कोई भेदरेखा होनी चाहिए। मैंने बहुत खोजा पर भेदरेखा कहीं नहीं मिली। मेरी जिज्ञासा है—जीवन और मरण में भेदरेखा कहां है? आप कहते हैं—जीवन अलग है और मरण अलग। आदमी जीना चाहता है, मरना नहीं चाहता। इसका मतलब है—आपको भेदरेखा है पर वास्तव में जीवन और मरण के बीच भेदरेखा कहां है?

**जीवने मरणे क्वास्ति भेद-रेखा समन्ततः।**

**न लब्धेयं मया स्वामिन्, ततो जिज्ञासितं मम ॥**

एक बच्चा जन्मा, पहला क्षण बीता। क्या उस समय वह केवल जीता है? मरता नहीं है? हम क्या कहेंगे? कहा जाएगा—जिस क्षण में उसने जीना शुरू किया है उस क्षण में उसने मरना भी शुरू कर दिया है। इस स्थिति में भेदरेखा को कैसे पकड़े?

### आचार्य का समाधान

आचार्य ने कहा—वत्स ! जीवन और मरण में एक भेदरेखा है और वह आत्यन्तिक मरण के आधार पर खींची जा सकती है। जीवन की समाप्ति का नाम है—आत्यन्तिक मरण। यह भी सही है, जीवन के साथ-साथ मौत चल रही है। दोनों में प्रगाढ़ मैत्री है, दोनों साथ-साथ चल रहे हैं। जीवन मृत्यु को छोड़कर नहीं चलता, मृत्यु भी जीवन के साथ जुड़ी हुई चलती है। व्यक्ति जिस क्षण में जन्म लेता है, वह उसी क्षण में मरना शुरू कर देता है इसलिए जीवन और मरण के मध्य भेदरेखा खींचना भी मुश्किल है। जिस व्यक्ति का सौ वर्ष का जीवन है वह सौ वर्ष जीता है और सौ वर्ष मरता है। यह एक सच्चाई है। जो सूक्ष्मता से देखता है, उसका सत्य दो नहीं होता, एक होता है। सच्चाई एक होती है पर उसका ग्रहण नहीं होता। यदि जीवन और मरण को बांटेंगे तो कहा जाएगा—व्यक्ति पचास वर्ष जीता

है, पचास वर्ष मरता है। किन्तु जीवन और मरण को अविभक्त कर देखा जाए तो निष्कर्ष होगा—व्यक्ति सौ वर्ष जीता है और सौ वर्ष मरता है।

### जीवन और मृत्यु का क्षण

जीवन और मरण के बीच में पूरी भेदरेखा नहीं है। जीवन का अन्तिम क्षण है मृत्यु और मृत्यु का अन्तिम क्षण है जीवन। जीवन और मरण—दोनों साथ-साथ रहते हैं, इसलिए एक नए दर्शन की जरूरत है। जितनी गहराई से जीवन के दर्शन को समझना अपेक्षित है उतनी ही गहराई से मृत्यु के दर्शन समझना आवश्यक है। जीवन में दर्शन को छोड़कर मृत्यु के दर्शन को नहीं समझा जा सकता और मृत्यु के दर्शन को छोड़कर जीवन के दर्शन को नहीं समझा जा सकता। दोनों को साथ-साथ समझना होगा। भगवान् महावीर ने आवीचि-मरण के प्रतिपादन द्वारा एक नई दृष्टि प्रदान की। आवीचि-मरण का अर्थ है—प्रत्येक समय का जीवन प्रति समय में नष्ट होता है। यह प्रत्येक समय का मरण आवीचि-मरण कहलाता है।

### बुराई में छिपी है अच्छाई

महावीर ने कहा—तुम जीवन को समझो तो मृत्यु को भी समझो और मृत्यु को समझो तो जीवन को भी समझो। दोनों को समझो, एक को पकड़कर मत बैठो। यह एक नई बात है, जो महावीर के दर्शन से प्राप्त होती है।

किसी आदमी से कहा जाए—जीते रहो। उसे यह बहुत अच्छा लगेगा। जीवित रहो, यह वाक्य बहुत प्रिय है। किसी व्यक्ति से कहा जाए—मर जाओ! यह वाक्य उसे कैसा लगेगा? जब कहा जाता है—जिन्दा रहो तब अच्छा लगता है और जब कहा जाता है—मर जाओ तब बुरा लगता है, अप्रिय लगता है। महावीर ने इस भ्रांति को तोड़ा। उन्होंने कहा—जिन्दा रहो, यह वाक्य बहुत अच्छा लगता है पर इसके साथ जो बुराई छिपी है, उसे भी देखो। मर जाओ, यह कथन बुरा लगता है पर इसके साथ जो अच्छाई छिपी है, उसे भी देखो।

भगवान् महावीर का दृष्टिकोण समग्र था। वे किसी शब्द को नहीं पकड़ते थे। आजकल शब्दों को बहुत पकड़ा जाता है किन्तु शब्द के पीछे जो समग्रता होती है, उसको छोड़ दिया जाता है। वाणी और अर्थ को कभी अलग नहीं करना चाहिए पर उन्हें अलग कर दिया जाता है। बुराई में भी अच्छाई छिपी हो सकती है और अच्छाई में भी बुराई निहित हो सकती है।

## श्रेणिक का अश्रुय

महावीर के समवसरण में एक व्यक्ति ने राजा श्रेणिक से कहा—तुम जीते रहो और उसी व्यक्ति ने भगवान महावीर से कहा—तुम मर जाओ। राजा श्रेणिक ने भगवान् से पूछा—भन्ने! इस अनर्गल प्रलाप का अर्थ क्या है ?

महावीर ने कहा—उसने जो कहा है, वह बिल्कुल सही है।

भंते ! कैसे ?

तुम्हें जीना प्रिय लगता है, अच्छा लगता है पर जीने के पीछे क्या छिपा हुआ है, उसे तुम नहीं समझ पा रहे हो। तुमने जीवन को जिया है, पर सकाम जीवन नहीं जिया है, समाधिमरण के अनुकूल जीवन नहीं जिया है। इसलिए यह कह रहा है—तुम्हारा जीना अच्छा है, मरना अच्छा नहीं है। क्योंकि समाधिमरण की तैयारी तुम्हारे जीवन में नहीं है।

‘मर जाओ !’ इसके पीछे क्या रहस्य छिपा है ?

उसके यह कहने का रहस्य था—तुम क्यों कारा में बंदी बने बैठे हो। निर्वाण तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। जीने से अधिक मरने में सार्थकता है।

श्रेणिक को बात समझ में आ गई। शब्द के पीछे छिपा रहस्य अभिव्यक्त हो गया।

## मृत्यु महोत्सव है

जीवन और मरण को तोड़कर नहीं देखा जा सकता। समाधिमरण के साथ समाधिपूर्ण जीवन को भी देखना होगा। समाधिपूर्ण जीवन के साथ समाधिमरण की ओर भी ध्यान केन्द्रित करना होगा। बहुत लोग सोचते हैं—अभी क्या अवस्था है ? जब अवस्था ढलेगी, समाधिमरण की तैयारी करेंगे। यह बात चिन्तनीय है। वस्तुतः मृत्यु की तैयारी क्रमशः करनी होती है। इसमें सबसे बड़ी बाधा है—मूर्छा। एक कामना जीवन में निरन्तर बनी रहती है और वह व्यक्ति को समाधिमरण की प्रक्रिया की ओर प्रस्थान नहीं होने देती। हमने अनेक बार इस उपमा को सुना है—मरने का मतलब है पुराने कपड़े उतार देना और नए कपड़े को पहन लेना। एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है ‘मृत्यु महोत्सव’। उसमें कहा गया है—मरना एक महोत्सव है, उससे डरो मत। मृत्यु के संदर्भ में बहुत सुन्दर चित्रण उस ग्रन्थ में उपलब्ध होता है—

जीर्ण देहादिकं सर्वं, नूतनं जायते यतः।

स मृत्यु किं न मोदाय, सतां सातोत्थितिर्यथा ॥

जिससे जीर्ण देह नूतन बन जाती है, वह मृत्यु है। क्या वह प्रमोद के लिए नहीं है। वह वैसे ही प्रमोद के लिए है जैसे किसी सुख की उपलब्धि।

### मनुष्य की प्रकृति

इतना समझाने पर, मृत्यु को महोत्सव बतलाने पर भी मौत का डर निकला हो, ऐसा लगता नहीं है। आदमी जिस अवस्था में है उसको छोड़ना नहीं चाहता। वह जिस मकान में रहता है, उस मकान को छोड़ना नहीं चाहता। जिस गांव में रहता है, उस गांव को छोड़ना नहीं चाहता। एक वृद्ध महिला से मैंने पूछा—तुम भी बाहर परदेस में रहती हो? उसने उत्तर दिया—महाराज! क्या करूं? वहां मन तो नहीं लगता पर रहना पड़ता है। एक वृद्ध भाई से पूछा—आजकल गांव में नहीं रहते? उसने कहा—महाराज! सारे लड़के बाहर रहते हैं। घर में कोई नहीं रहना चाहता। इसलिए परदेस में जाना पड़ता है। परवश होने के बाद यही स्थिति बनती है। प्रदेश में घर पर निठल्ला बैठा रहता हूं। जब गांव में जाता हूं तो दस-बीस परिचित आदमी मिल जाते हैं। बातचीत में समय कट जाता है। पर प्रदेश में किसी को नहीं जानता इसलिए किससे बात करूं? किससे बोलूं? वह घर मुझे जेलखाने जैसा लगता है पर उसमें रहना ही मेरी नियति बन गया है।

### मृत्यु : समाधिमरण का प्रयोग

जिससे परिचय हो जाता है, व्यक्ति उसे छोड़ना नहीं चाहता। इसमें सबसे बड़ी बाधा है संस्कार। व्यक्ति के संस्कार सघन बन जाते हैं। आदमी इस शरीर को छोड़ना नहीं चाहता। इस शरीर से जो सम्बन्ध बना हुआ है, उसे छोड़ने का मानस नहीं बनता। व्यक्ति मानता है—परिवार छूट जाएगा, घर छूट जाएगा, धन छूट जाएगा। बीमारी बढ़ रही है, ठीक से खाया नहीं जा रहा है, सांस लेने में दिक्कत हो रही है फिर भी उसका प्रयत्न रहता है जैसे-तैसे जीने का। जीने में कोई सार नहीं है पर मूर्च्छा छूटती नहीं है। वह जिससे बंधा हुआ है, उसे छोड़ना नहीं चाहता।

‘मृत्यु महोत्सव है’ यह बात उसी व्यक्ति के समझ में आ सकती है जिसने एक प्रक्रिया को क्रम से अपनाया है अन्यथा यह बात समझ में नहीं आ सकती। जयाचार्य ने हेमराजजी स्वामी को अन्तिम क्षणों में कहा—महाराज! आप अब समाधिमरण की तैयारी में हैं, समाधिमरण की दिशा में प्रस्थान कर रहे हैं। हमें किसी बात की चिन्ता नहीं है क्योंकि मृत्यु को महोत्सव के रूप में परिणत करने वाला धन्य माना जाता है। मृत्यु एक महोत्सव है, वह चिन्ता का विषय नहीं है। उस व्यक्ति को मृत्यु



की चिन्ता नहीं सताती जो निश्चिन्तता का जीवन जीता है। मृत्यु समाधिमरण का एक प्रयोग है। जो निश्चिन्तता का जीवन जीता है, वह इसकी अनुभूति कर सकता है।

### समाधि का प्रयोग : निःशेषम्

उज्जैन चातुर्मास (वि. सं. २०१२) में आगम संपादन का कार्य प्रारंभ हुआ। हमने सोचा—काम करना है, संपादन करना है और काफी गहराई में उतरना है। यदि सोचने का चक्कर निरन्तर चलेगा तो समस्या पैदा हो जाएगी। निरन्तर चिन्तन से काम भी ठीक नहीं होगा, बुढ़ापा भी जल्दी आएगा और मौत भी जल्दी आ सकती है। चिन्तन तनाव पैदा करता है। यदि निरन्तर तनाव रहता है तो बुढ़ापा, बीमारी और मौत—तीनों को खुला निमंत्रण मिल जाता है। प्रश्न प्रस्तुत हुआ—क्या किया जाए? एक समाधान खोजा—निःशेषम्। जब तक काम में लगे रहे, दो घंटा-तीन घंटा काम किया तब तक उस कार्य में अपनी शक्ति का नियोजन। ज्योंही कार्य को संपन्न कर उठते, उस कार्य से पूर्णतः निवृत्ति। आज जो करना था, कर लिया, शेष कुछ भी नहीं रहा, इस चिन्तन ने, इस निःशेष सूत्र ने कार्य की गति को बढ़ाया, कार्य से पैदा होने वाले तनाव से मुक्त बनाए रखा। 'निःशेषम्' यह सूत्र हमारे कार्य की सफलता का महत्वपूर्ण आधार बना है। आचार्य भिक्षु ने जीवन के अन्तिम क्षणों में यही कहा था—'उणायत कोई रही नहीं', कुछ भी बाकी नहीं रहा। हर व्यक्ति ने कुछ न कुछ शेष रह जाता है। आंतरिक अनुभूति में जीने वाला व्यक्ति कह सकता है—मेरे कुछ बाकी भी नहीं रहा। जहां मूर्च्छा है वहां निःशेष होने की बात प्राप्त नहीं होती। मूर्च्छाग्रस्त व्यक्ति के कुछ शेष रह ही जाता है। मूर्च्छा समाप्त हो जाए तो परिपूर्णता का सूत्र प्राप्त हो जाए। यह निःशेष का सूत्र समाधि का एक प्रयोग है।

### समाधिमरण की प्रक्रिया

समाधिमरण की प्रक्रिया एक दिन में पूर्ण होने वाली प्रक्रिया नहीं है। महावीर ने समाधि-मरण का जो दर्शन दिया है, उसकी एक व्यवस्थित प्रक्रिया का निर्देश मिलता है। आचारांग सूत्र में उस प्रक्रिया का बहुत सुन्दर उल्लेख है। व्यक्ति सबसे पहले आहार का नियमन करे। बारह वर्ष तक आहार के निःतर अल्पीकरण का विधान है। केवल आहार का प्रयोग ही नहीं, उसके साथ कषाय का भी अल्पीकरण करे। कषायों को पतला करता चला जाए—क्रोध, मान, माया, लोभ आदि को कृश बनाता चला जाए। शरीर और कषाय—दोनों कृश बन जाए।

समाधिमरण का एक संदर्भ है—अतीत के जीवन की आलोचना। अतीत में किए हुए सभी प्रकार के अकरणीय कृत्यों का प्रायश्चित समाधिमरण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रस्थान बन जाता है। अतीत की आलोचना से स्वयं को विशुद्ध बनाकर व्यक्ति क्षमापना करता है। वह प्राणी मात्र से अपने द्वारा किए गए व्यवहार के संदर्भ में उनसे क्षमायाचना करता है, उन्हें क्षमा प्रदान करता है। जैनदर्शन का प्रसिद्ध शब्द है खमतखामणा। क्षमा लेना और क्षमा देना। यह क्षमा का व्यवहार व्यक्ति को ऋजु और निःशल्य बना देता है। इतनी सारी प्रक्रिया से गुजरने के बाद व्रत का आरोपण होता है।

### कायोत्सर्ग : निवृत्ति का प्रयोग

समाधिमरण की इस प्रक्रिया के बाद व्यक्ति कायोत्सर्ग में स्थित हो जाता है। वह लम्बा कायोत्सर्ग करता है। जब कायोत्सर्ग किया जाता है तब श्वास स्वतः मंद हो जाता है, शिथिल हो जाता है। जब श्वास शिथिल और मंद हो जाता है तब बाहर से ऑक्सीजन लेने की जरूरत कम हो जाती है। यह माना जाता है—जितनी प्रवृत्ति कम होती है, ऑक्सीजन की खपत उतनी ही कम हो जाती है। कायोत्सर्ग निवृत्ति का प्रयोग है। उस अवस्था में ऑक्सीजन की खपत बहुत कम होती है।

आहार का अल्पीकरण, कषाय का अल्पीकरण, अतीत का आलोचन, क्षमापन, व्रत का आरोपण और कायोत्सर्ग—यह समाधिमरण का एक समग्र चक्र है।

### निष्पत्ति : मूल्यांकन का क्षण

आचार्य विनोबा भावे ने कहा था—जैन दर्शन में समाधिमरण की जो व्यवस्थित प्रक्रिया निर्दिष्ट है, वह किसी अन्य दर्शन में प्राप्त नहीं है। जैन दर्शन में समाधिमरण का जो उपक्रम उपलब्ध होता है, वह किसी अवस्था विशेष में किया जाने वाला उपक्रम नहीं है। समाधिमरण का प्रस्तुत प्रयोग प्रतिदिन किया जाने वाला प्रयोग है। कायोत्सर्ग, मौन और कषाय की अल्पता—ये सारे समाधिमरण के प्रयोग हैं। जो व्यक्ति इनका प्रयोग पहले से ही शुरू कर देता है, उसे महावीर का समाधिमरण का दर्शन उपलब्ध हो जाता है।

समाधिमरण जीवन की निष्पत्ति है। कार्य से अधिक मूल्यवान् उसकी निष्पत्ति होती है। एक विद्यार्थी नौ महीने तक पढ़ता रहा, उसने खूब परिश्रम किया किन्तु वह परीक्षा में फेल हो गया। परिवारवालों ने कहा—यह निकम्मा है। इसने श्रम किया ही नहीं इसलिए यह परीक्षा में फेल हो गया।

निष्पत्ति के आधार पर व्यक्तित्व का मूल्यांकन होता है। निष्पत्ति को सुखद बनाने के लिए सघन प्रयत्न की जरूरत होती है। दुनिया निष्पत्ति चाहती है, परिणाम चाहती है। वह उसी के आधार पर व्यक्ति का अंकन करती है।

### मृत्यु एक निष्पत्ति है

दो मल्ल लड़ रहे थे। एक मल्ल जीत गया और दूसरा हार गया। जो मल्ल जीता था, लोग उसे धन्यवाद देने के लिए दौड़ पड़े। जो हार गया, उसे कोसने लगे। व्यक्ति जीत और हार को देखता है। उसे इससे मतलब नहीं होता कि हारने वाला कितने पुरुषार्थ से लड़ा, कैसे लड़ा। उसके सामने जीत और हार मुख्य होती है। शेष सारे पहलू उसके नीचे दब जाते हैं।

जीतना और हारना एक निष्पत्ति है। निष्पत्ति का क्षण बहुत मूल्यवान क्षण होता है। यह माना जाता है—जिस व्यक्ति का अन्तिम समय अच्छा बीतता है, वह जीवन की बाजी जीत जाता है। जिस व्यक्ति का अन्तिम समय अच्छा नहीं बीतता, उसके लिए कहा जाता है—वह जीवन की बाजी हार गया। निष्पत्ति के क्षण की मूल्यवत्ता इससे स्पष्ट हो जाती है। मृत्यु का कोई निश्चित समय नहीं है इसलिए समाधिमरण के लिए प्रतिक्षण जागरूक रहना होता है।

### मृत्यु को देखें

मृत्यु दर्शन का एक पहलू है—मौत को देखो। जिसने मौत को देखा, वह बुराई से बच गया। आचारांग का एक महत्वपूर्ण सूत्र है—**माराभिसंकी मरणा पमुच्चति**—जो मृत्यु से आशंकित रहता है, वह मौत से मुक्त हो जाता है।

हम दिल्ली में एक उद्योगपति की कोठी में ठहरे हुए थे। उस उद्योगपति का लड़का बहुत समझदार था। उसने कहा—महाराज ! हम लोग इतना काम कर रहे हैं, इतना धन कमा रहे हैं। बड़े-बड़े उद्योग और कारखाने चला रहे हैं। हमारे घर में धन का विशाल संचय है। अभी हम एक और बड़ा कारखाना प्रारम्भ करने जा रहे हैं। उसमें करोड़ों रुपए लग चुके हैं। मेरे मन में बार-बार एक प्रश्न उभरता है—आखिर हम यह सब क्यों कर रहे हैं? किस लिए कर रहे हैं? इसकी परिणति क्या है? हमें इन सबसे आखिर क्या मिलेगा? यहां आकर चिंतन रुक जाता है, थम जाता है। हमें एक दिन इस दुनिया से चले जाना है। हम क्यों ऐसे गोरखधंधों में फंसे हुए हैं? हमारा भविष्य क्या है? चिंतन हमें अनेक बार व्यथित कर देता है।

जो लोग जीवन में बहुत बुराइयां करते हैं, निरन्तर भ्रष्टाचार में डूबे हुए हैं, पदलोलुप हैं, मूर्च्छा से घिरे हुए हैं, उनके सामने भी यह प्रश्न उभरता होगा—आखिर यह सब क्यों? यह सच्चाई है—सब कुछ यहीं धरा रह जाएगा। यदि इस प्रश्न के संदर्भ में व्यक्ति अपने जीवन-व्यवहार की मीमांसा करे तो उसे एक नया दर्शन, रूपांतरण का सूत्र प्राप्त हो जाएगा।

## सेठ और संन्यासी

एक घुमक्कड़ संन्यासी घूमते-घूमते किसी गांव में पहुंचा। वह बहुत प्रसिद्ध संन्यासी था। गांव के लोग उसके पास गए। उन्होंने संन्यासी से निवेदन किया—महाराज! हमारे गांव में और सब ठीक है किंतु एक समस्या है। हमारे गांव में एक सेठ है, वह बहुत धनी है पर कंजूस है, मक्खीचूस है। उसे आप समझा दें तो गांव का कल्याण हो जाए। संन्यासी ने कहा—मैं समझाने की कोशिश करूंगा।

वह सेठ भी संन्यासी के पास आया। संन्यासी ने पूछा—कुछ धर्म करते हो? महाराज कुछ भी नहीं करता।

कभी दूसरों का काम भी करते हो?

नहीं महाराज!

क्या मेरा एक काम करोगे?

महाराज! आप संन्यासी हैं। आपका काम जरूर कर दूंगा।

संन्यासी ने अपने झोले से एक सुई निकाली। उसे सेठ के हाथ में देते हुए कहा—सेठजी! यह सुई आप रखें। जब मैं मर जाऊं, आप भी मर जाएं, तब यह सुई अगले जन्म में मुझे लौटा दें।

सेठ यह सुनकर हक्का-बक्का रह गया। उसने कहा—महाराज! आपने कितनी भोलेपन की बात कही है। मरने के बाद शरीर भी साथ नहीं चलता तो फिर मैं सुई कैसे ले जाऊंगा?

अरे! तुमने इतनी संपत्ति अर्जित की है। कुछ तो साथ में चलेगी?

नहीं महाराज! कुछ भी साथ नहीं रहेगा।

सेठजी! जब सब यहीं रह जाएगा तब इस धन को क्यों नहीं बांटते हो? इससे गांव का भला क्यों नहीं करते हो?

सेठ की आंख खुल गई। उसकी मूर्च्छा पर एक प्रहार हुआ और वह गांव के कल्याण के लिए उद्यत हो गया।

## समाधिमरण का प्रयोग

मूर्च्छा पर प्रहार करना समाधिमरण का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। यदि हम महावीर के समाधिमरण के दर्शन को अनेक पहलुओं से देखें तो जीवन में नया आलोक मिलेगा। जिसने महावीर के इस दर्शन को समझा है, उसे कायोत्सर्ग का प्रयोग मिलेगा। महावीर के इस दर्शन को समझने वाला कायोत्सर्ग को अधिक से अधिक समझने का प्रयत्न करेगा। कायोत्सर्ग का अर्थ है मृत्यु से साक्षात्कार। जीवन से साक्षात्कार करना जितना जरूरी है उतना ही जरूरी है मृत्यु से साक्षात्कार करना। जिसने मृत्यु का साक्षात्कार किया है वही अच्छा जीवन जी सकता है।

हम इस भाषा में बोलते हैं—महावीर ने मरने की कला सिखाई। वस्तुतः महावीर ने जीने और मरने की कला को बांटकर नहीं सिखाया। महावीर की भाषा में जो जीने की कला है वही मृत्यु की कला है। जो मृत्यु की कला है, वही जीवन की कला है।

## मरण का वर्गीकरण

महावीर ने मृत्यु का एक वर्गीकरण प्रस्तुत किया—पंडित मरण, बाल-मरण और बाल-पंडित मरण। पंडित मरण की तुलना सात्त्विक गुण से की जा सकती है। बाल-पंडित मरण की तुलना रजोगुण से और बाल-मरण की तुलना तमोगुण से की जा सकती है। महावीर ने कहा—व्यक्ति बाल-मरण से न मरे। कोई बच्चा जन्मता है तो वह बाल अवस्था में ही जन्मता है किंतु वह बाल-मरण—असमाधिमरण से न मरे। दूसरी भाषा में कहें तो अकाम-मरण से मरना बाल-मरण है। सकाम-मरण पंडित-मरण है। यदि महावीर का यह दर्शन समग्रता से समझ में आए तो उनका पूरा दर्शन समझ में आ जाएगा।

## वर्धमान : जागरूकचर्या

### प्रश्न मनुष्य के स्वभाव का

अमेरिकी दार्शनिक जोनेथन एडवर्ड्स ने एक प्रश्न उठाया—मनुष्य का स्वभाव क्या है? पाप उसका स्वभाव है या कोई दूसरा तत्त्व उसका स्वभाव है? तर्क के द्वारा, परीक्षा और जांच के द्वारा, वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे—मनुष्य स्वभाव से कलुषता को अपनाए हुए है। उसका वह स्वभाव क्यों बना? उसका वह स्वभाव कहां से आया? उसका कारण ईश्वर नहीं है क्योंकि मनुष्य स्वतंत्र है। ईसाई धर्म में माना गया है—एक आदमी का पाप उसकी सारी संतति को भुगतना पड़ता है। इसका अर्थ है—पाप की जड़ में आदमी है। क्या यह सही है? यह प्रश्न अनेक दार्शनिकों के मन में उठता रहा है। मनुष्य सहज ही पाप की ओर जाता है। वह धर्म की ओर नहीं जाता। धर्म के लिए प्रयत्न करना होता है। पाप के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। प्रमाद के लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। अप्रमाद और जागरूकता के लिए प्रयत्न करना होता है। मनुष्य की प्रकृति क्या है? उसका स्वभाव क्या है? इसे समझना आसान नहीं है। यह एक बहुत बड़ी दार्शनिक गुत्थी रही है। मनुष्य का स्वभाव प्रमाद है या अप्रमाद? धर्म है या पाप? आदमी बुराई की ओर सहजता से चला जाता है। अच्छाई के लिए बहुत सीखना पड़ता है बहुत तपना पड़ता है। पहाड़ पर चढ़ने के लिए काफी प्रयत्न करना पड़ता है किन्तु उससे नीचे व्यक्ति सीधा लुढ़क जाता है।

### आत्मा का स्वभाव

हम महावीर के दर्शन के संदर्भ में इस प्रश्न पर विचार करें। महावीर ने कहा— सोवहिए हु लुप्पती बाले—जो सोपधिक है वह पाप की ओर जाता है जिसमें उपाधि की मूर्च्छा है, जो उपाधि से जुड़ा हुआ है, वह पाप की ओर जाता है। यह महावीर की जागरूक चर्या का मुख्य सूत्र रहा है। आत्मा का स्वभाव पाप की ओर जाना नहीं है। आत्मा पाप नहीं है और पाप की ओर जाना उसका स्वभाव नहीं है। किन्तु आत्मा केवल आत्मा नहीं है, वह सविशेषण है। उपाधि का एक अर्थ है—विशेषण, उपाधि सहित होना। उपाधि का एक अर्थ कष्ट है। वह पदार्थ

का वाचक भी है। जब आत्मा अकेला है तब उसका स्वभाव है अच्छाई की ओर जाना, ऊंचाई की ओर जाना। उपाधि के कारण वह नीचे की ओर जा रहा है। उपाधि उसे दूसरी दिशा में ले जा रही है।

### उपाधि और पाप

भगवान् महावीर ने अन्वेषण किया—आदमी नीचे क्यों जाता है? वह पाप की ओर क्यों जाता है? उन्हें समाधान मिला—वह जो लुप्त हो रहा है, अपने अस्तित्व का लोप कर रहा है, उसका कारण है उपाधि सहित होना। जहां-जहां उपाधि की दिशा में प्रस्थान है, वहां-वहां प्रमाद और पाप है। जहां-जहां निरुपाधि की ओर प्रस्थान है वहां-वहां धर्म और अप्रमाद है। अहिंसा का भी मूल आधार यही है। इसी आधार पर कहा जाता है—**अपरिग्रहः परमो धर्मः**। उपाधि रहित होना अपरिग्रह का आधार सूत्र बनता है। यह सूत्र कितना सफल या असफल हुआ है, इसकी समीक्षा की जा सकती है किन्तु भगवान् महावीर ने इसका जो कारण बतलाया है, वह बहुत महत्वपूर्ण है।

### दुःख का कारण

आत्मा का जो द्वन्द्वात्मक अस्तित्व है, आत्मा के साथ पुद्गल का जो योग है, वह योग ही पाप का बहुत बड़ा कारण बनता है। उसे हम मिथ्यात्व कहें, अविरति कहें, प्रमाद कहें, कषाय कहें या चंचलता कहें। भिन्न-भिन्न भूमिकाओं में ये अलग-अलग रूप ले लेते हैं किन्तु इनके मूल में आत्मा के साथ उपाधि का जुड़ना है, पुद्गल का योग होना है। जितनी उपधियां हैं या जितनी उपाधियां हैं, वे सब मनुष्य को पाप की ओर ले जाती हैं। कहा गया—**कम्मणा उवाही जणयई** कर्म से उपाधि पैदा होती है। हम एक शब्द में कहे तो कहा जा सकता है—आदमी कर्म से बंधा हुआ है इसलिए वह पाप करता है। बंधे हुए आदमी का आचरण एक प्रकार का होता है और खुले हुए आदमी का आचरण दूसरे प्रकार का होता है। कोई आदमी सहज ही पाप की ओर क्यों जाता है? इस प्रश्न का सीधा उत्तर यही हो सकता है—व्यक्ति परवश है, वह स्ववश नहीं है। मनु स्मृति में कहा गया—**सर्वं परवंशं दुखं: सर्वमात्मवशं सुखम्**—दुःख का कारण है परवशता। आदमी कर्म से बंधा हुआ है, परवश है। वह परवशता के कारण नीचे की ओर जा रहा है।

### पाप का मूल है कर्म

महावीर ने देखा—पाप का मूल है कर्म। इसलिए उन्होंने पाप का वर्जन

किया। बहुत बार पूछा जाता है—जागरूकता की परिभाषा क्या है? जागरूकता का अर्थ है—कर्म को देखो और पाप का वर्जन करो। व्यक्ति निरन्तर देखता चला जाए—यह कर्म है, यह बंधन है। व्यक्ति सांप को देखता है तो बचने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति आग को देखता है तो मुड़ जाता है, बचने का मार्ग खोज लेता है। उससे उसे भय लगता है, डर लगता है और वह बचाव के लिए प्रयत्नशील बनता है। जब व्यक्ति यह देखने लग जाए—सामने कर्म है, बंधन है, वह दुःख देने वाला है, सताने वाला है तब स्थिति बदल जाती है। जिस दिन यह स्थिति निर्मित होगी, उस दिन आदमी बंधन से डरने लग जाएगा और यही है जागरूकता। प्रत्याख्यान वही व्यक्ति कर सकता है, जिसे कर्म बन्धन की स्पष्ट अनुभूति हो जाए। यह सबसे बड़ा आलम्बन है अपने बचाव का, अस्तित्व के अनावरण का।

भगवान् महावीर ने जो आचरण किया, उसके पीछे जागरूकता का एक पूरा दर्शन है। उसे समझे बिना पाप से धर्म की ओर जाना, प्रमाद से अप्रमाद की ओर जाना सहज नहीं है।

### जागरूकता का सूत्र

भगवान् महावीर ने चेतन और अचेतन जगत् के संदर्भ में अपने विराट् अस्तित्व को देखा। प्रत्येक आदमी सोचता है—‘मैं हूँ।’ इस सोच में उसका बहुत समय बीतता है। मुझे खाना, मुझे पीना है, मुझे भूख लगी है, मुझे रोटी बनानी है। मुझे व्यापार करना है, पैसा कमाना है। इस परिधि में ही उसका सारा चिन्तन चलता है। महावीर ने देखा—केवल मैं नहीं हूँ। मैं ही सब कुछ नहीं हूँ, केवल मेरा ही अस्तित्व नहीं है, दूसरों का भी अस्तित्व है। उन्होंने देखा—मिट्टी का भी अस्तित्व है, पानी का भी अस्तित्व है, अग्नि का भी अस्तित्व है, वायु का भी अस्तित्व है। पेड़ का पत्ता हिला और हम जान गए—हवा चल रही है। हम हवा को देखते नहीं हैं, अनुमान से जानते हैं। महावीर ने वायुकाय के अस्तित्व का साक्षात् किया। उन्होंने देखा—वनस्पति का भी अस्तित्व है। पेड़-पौधों का भी अस्तित्व है। घास के एक छोटे से तिनके और एक छोटे से अंकुर का भी अपना अस्तित्व है, अत्यन्त सूक्ष्म हरीतिमा का भी अपना अस्तित्व है।

### जागरूकता : एकात्मता की अनुभूति

उनका दर्शन आगे बढ़ा—चींटी और कीड़े-मकोड़ों का भी अपना अस्तित्व है। बन्दर और खरगोश का अस्तित्व है। मानव का अस्तित्व तो स्पष्ट है। मानव



सृष्टि, पशु सृष्टि से लेकर वनस्पति, वायु, अग्नि, पानी और मिट्टी—इन सबका अस्तित्व है। महावीर ने इन सबके साथ एकात्मता स्थापित की और वे जागरूक बन गए। जब तक प्राणीजगत् के साथ एकात्मता या अनुभूति नहीं होती तब तक किसी भी आचरण में जागरूकता आ जाए, यह संभव नहीं है। आज चलता हुआ आदमी बिना आवश्यकता के ही टहनियों को तोड़ता चला जाता है। ऐसा व्यक्ति कभी भी जागरूक नहीं बन पाता, उनके साथ एकात्मता की अनुभूति नहीं कर पाता। अगर एकात्मता की अनुभूति हो जाए तो वह ऐसा कार्य नहीं कर सकता।

### संदर्भ पर्यावरण की समस्या का

महावीर की जागरूकता व्यक्तिगत जागरूकता नहीं थी। उनकी जागरूकता सारे संसार की जागरूकता थी। उन्होंने जो दर्शन दिया, वह आज की समस्या के समाधान का दर्शन है। आज के वैज्ञानिक इस बात से चिंतित हैं—जिस तरह पानी का अपव्यय किया जा रहा है, एक समय ऐसा आ सकता है, जब पीने का पानी भी सुलभ नहीं होगा। आज कहा जा रहा है—पानी का कम उपयोग करें, आवश्यकता से अधिक पानी का व्यय न करें। हमारी प्राचीन कहावत है—पानी को घी जैसे बरतो, पानी का घी की तरह प्रयोग करो। यह धारणा बहुत महत्वपूर्ण थी।

सृष्टि संतुलन शास्त्र आधुनिक विज्ञान के लिए विज्ञान की एक नई शाखा हो सकती है किन्तु संतुलन का जो सूत्र महावीर ने दिया, वह आज भी बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा—जो पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति के अस्तित्व को अस्वीकार करता है वह अपने अस्तित्व को अस्वीकार करता है। अपने अस्तित्व के समान उनका अस्तित्व है। हम इस तुला से तौलें तो न केवल अहिंसा का सिद्धांत फलित होता है अपितु पर्यावरण विज्ञान की समस्या को भी महत्वपूर्ण समाधान प्राप्त होता है। यह आवश्यक है—हम अहिंसा को केवल धार्मिक रूप में ही प्रस्तुत न करें। महावीर ने जो कहा, उसका प्रस्तुतिकरण केवल धर्म की भूमिका पर न करें। यदि उसे वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाए तो मानव जाति को एक नया आलोक उपलब्ध हो सकता है।

### भावी पीढ़ी क्या सोचेगी

आज पेट्रोल बहुत मिलता है। उससे मोटरें चल रही हैं, बसें चल रही हैं। वैज्ञानिकों का कहना है—यदि इसी गति से पेट्रोल का उपयोग होता रहा तो सौ वर्ष के बाद पेट्रोल समाप्त हो जाएगा। ईंधन समाप्त हो जाएगा, आज ईंधन के नए

स्रोतों की खोज की जा रही है। वैज्ञानिक चिंतित हैं—ऊर्जा के बिना काम कैसे चलेगा? आज सारा वैज्ञानिक विकास विद्युत् के विकास पर टिका हुआ है। अगर एक ईंधन समाप्त हो जाता है तो वैज्ञानिक युग समाप्त होता है। भूमि में न जाने कितने काल से पेट्रोल भरा हुआ था। उसको किसी ने भी नहीं निकाला। उसे निकालना वैज्ञानिक युग की विशेषता है किन्तु पेट्रोल को इतना निकाला जा रहा है, जिसकी कोई सीमा नहीं है। सौ वर्ष बाद आने वाली पीढ़ी कहेगी—हमारे पूर्वजों ने हमारे साथ अन्याय किया, अत्याचार किया। हमारे पूर्वज खूब संपन्नता से रहे, उन्होंने पेट्रोल आदि पदार्थों का बहुत उपयोग किया किन्तु हमारे लिए कुछ भी नहीं छोड़ा। क्या वह अपनी दरिद्रता के लिए अपने पूर्वजों को नहीं कोसेगी? हमारे पूर्वजों ने संयम किया, कठोर जीवन जीया, उसका परिणाम हम आज भोग रहे हैं। वे कठिनाइयाँ सहकर हमारे लिए सुविधा का मार्ग छोड़ गए। यदि वर्तमान जीवन की परिचर्या देखें तो यह प्रश्न गंभीर बन जाता है—जितना असंयम और भोग आज की पीढ़ी में चल रहा है उसका भावी पीढ़ी पर क्या असर होगा? हमारे पूर्वजों ने जो जीवन जीया, वह हमारे लिए वरदान बन गया किन्तु आज हम जो जीवन जी रहे हैं, वह भावी पीढ़ी के लिए अभिशाप नहीं बनेगा? हम भावी पीढ़ी को सब दृष्टियों से दरिद्रता की ओर ढकेलते जा रहे हैं, यह समझदारी की बात नहीं है।

### जागरूकता का आधार सूत्र

भूमि का अतिरिक्त दोहन सचमुच समस्या पैदा कर रहा है। जैसे—भूमि की समस्या है वैसे ही पानी की समस्या है। महावीर ने कहा—मूर्च्छा और भोग का अल्पीकरण करते चले जाओ। यह एक महान् सिद्धांत है किन्तु इसे कोई महत्त्व नहीं दिया गया। पानी का अपव्यय किया जा रहा है और वह समस्या बन रहा है। ईंधन की समस्या भी स्पष्ट है और वह बढ़ती ही चली जा रही है। हवा की भी समस्या बन जाएगी। एक समय था—जो सहज हवा चलती थी, व्यक्ति उसमें ही संतोष मान लेता था। वह स्वाभाविक जीवन था। किन्तु आदमी से रहा नहीं गया। उसने पंखिया बनाई, पंखे बन गए। आजकल कृत्रिम रूप से हवा बटोरने के न जाने कितने साधन बन गए हैं। संभव है—हवा के साधन भी किसी दिन और अधिक खतरनाक बन जाएं। वनस्पति की समस्या भी कम नहीं है। यह सारी पर्यावरण की समस्या सृष्टि संतुलन के लिए एक बड़ा खतरा है।

भगवान् महावीर ने पांच स्थावर-काय की जो बात कही, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। स्थावर जगत् के साथ एकात्मता की अनुभूति होनी चाहिए। जैसे हमारा अस्तित्व

है, वैसे ही सृष्टि का अस्तित्व है, वनस्पति आदि का अस्तित्व है। जैसे-जैसे यह अनुभूति स्पष्ट और प्रखर होती चली जाएगी वैसे-वैसे हमारी जागरूकता बढ़ती चली जाएगी। जागरूकचर्या का आधार है—पूरे प्राणी जगत् के साथ एकात्मता। केवल प्राणी जगत् के साथ ही नहीं, पुद्गल जगत् के साथ भी एक विशेष प्रकार की अनुभूति होनी चाहिए। एक निर्जीव वस्तु को भी बिना मतलब इधर-उधर रखना असंयम है। जीव का असंयम होता है तो अजीव का भी असंयम होता है। इसका अर्थ है—अजीव पदार्थ को भी बिना प्रयोजन इधर-उधर करना अच्छा नहीं है। भगवान् महावीर ने जागरूकता का जो सूत्र दिया, जिस जागरूकता को महावीर ने जिया, उसका आधार सूत्र है—दूसरे के अस्तित्व की स्वीकृति।

जागरूकता का दूसरा आधार है—उपधि का अल्पीकरण। उपधि आदमी को भटकाती है। उपधि के कारण व्यक्ति में अहंकार प्रबल बनता है। मनुष्य में इतना अहंकार है कि वह दूसरों के अस्तित्व को जानते हुए भी उसकी स्वीकृति नहीं देता। अहंकार से भरा व्यक्ति अपनी स्थिति का भी सही बोध नहीं कर पाता।

सुकरात के पास एक बड़ा जमींदार आया। वह अहंकार से भरा हुआ था।

सुकरात ने पूछा—क्यों आए हो ?

आपसे ज्ञान की बात सुनने आया हूँ।

तुम कहां से आए हो।

मैं इस शहर का प्रसिद्ध जमींदार हूँ, सामन्त हूँ। मैं अपार वैभवशाली हूँ, संपत्तिशाली हूँ।

तुम सामने पड़े विश्व के मानचित्र को लाओ।

वह उठा और विश्व का मानचित्र ले आया।

इसमें यूरोप कहां है ?

जमींदार ने एक छोटे से हिस्से पर अंगुली टिकाते हुए कहा—

यह यूरोप है ?

इसमें यूनान कहां है ?

जमींदार ने यूरोपीय भू-भाग में एक बिन्दु पर अंगुली टिकाई। उसने कहा— यह यूनान है।

इसमें तुम्हारी जमींदारी कहां है ?

जब यूनान ही एक बिन्दु जितना है तब मेरी जमींदारी इसमें कहां दिखाई देगी ?

तुम्हारी इतनी बड़ी जमींदारी इस नक्शे में नहीं आ सकती ।

नहीं महाराज !

विश्व के मानचित्र में एक बिन्दु जितनी भी तुम्हारे पास जमीन नहीं है और तुम उसका घमण्ड करते हो ! मेरा यही उपदेश है—तुम घमण्ड को छोड़ो ।

जमींदार का अहंकार चूर-चूर हो गया ।

जिस आदमी को अपनी सामान्य धन-संपत्ति पर अहंकार होता है, वह जागरूक नहीं बन सकता । मूर्च्छा में पड़ा रहता है । किन्तु जब वह इस विराट् संसार को देखता है तो उसे लगता है—वह कुछ भी नहीं है ।

### जागरूकता : जीवन का अंग

महावीर ने जागरूकता का दर्शन ही नहीं दिया किन्तु उसे अपने जीवन का मुख्य अंग बनाया । हम आचारांग सूत्र के नौवें उद्देशक को पढ़ें, उसमें महावीर का जीवन-दर्शन उपलब्ध है । उसे जाने बिना, जिए बिना केवल महावीर की गाथा गाने से हमारे हाथ कुछ नहीं आएगा । जब तक हम महावीर की जागरूकता के आधार-सूत्रों को नहीं पकड़ेंगे तब तक हम जागरूकता का जीवन नहीं जी पाएंगे । जागरूकता के दो आधार आधार-सूत्र प्रस्तुत हुए हैं । पहला है—प्राणी-मात्र के अस्तित्व का स्वीकार और उसके साथ एकात्मता की अनुभूति । दूसरा है—मूर्च्छा का अल्पीकरण । जैसे-जैसे ये दो कारण जीवन में घटित होते हैं, वैसे-वैसे प्रमाद घटता चला जाता है, जागरूकता बढ़ती चली जाती है ।

## वर्धमान : निद्रा संयम

### नींद के तीन प्रकार

भगवान् महावीर बहुत कम सोए । कहा जाता है—वे बारह वर्षों में केवल अड़चांस मिनट सोए । अगर कोई अपरिचित हो तो टिप्पणी कर सकता है—भगवान् को अनिद्रा की बीमारी रही होगी और क्या कारण हो सकता है ! उस समय बड़ी-बड़ी कंपनियां नहीं थीं, जो नींद की गोलियां बनाती हों, बेचती हों । आज अरबों-खरबों रुपये की नींद की गोलियां बिकती हैं । नींद की गोलियां बेचकर बड़ी-बड़ी कंपनियां अरबों रुपये कमा रही हैं । महावीर को नींद नहीं आई होगी इसलिए वे बहुत कम सोए होंगे, यह कल्पना कोई भी कर सकता है ।

नींद के स्वरूप पर विचार करें तो नींद तीन भागों में बंट जाती है—निद्रा, अतिनिद्रा और अनिद्रा । नींद लेना स्वाभाविक बात है । अतिनिद्रा एक बीमारी है और अनिद्रा भी एक बीमारी है । महावीर में ये तीनों प्रकार की स्थितियां नहीं थीं । आयुर्वेद के आचार्यों ने नींद के ये तीन विभाग किए हैं । अनिद्रा का एक विभाग और कर लेना चाहिए । अनिद्रा के दो प्रकार हो जाते हैं—नींद न आए, वह अनिद्रा है और नींद को न आने दें, वह भी अनिद्रा है ।

### नींद : कारण

महावीर को नींद की बीमारी नहीं थी । उन्हें आती थी, वे उसे उड़ाते थे, जागृत हो जाते थे । जब-जब नींद सताती, वे उसे दूर करने का प्रयत्न करते । अगर नींद नहीं आती तो जागने का प्रयत्न क्यों करते ? नींद आने की स्थिति में वे बाहर चले जाते, टहलते, उसे बार-बार उड़ाने को कटिबद्ध रहते । हमारे सामने प्रश्न हैं—वे अनिद्रा रोग से ग्रस्त नहीं थे तो फिर क्यों जागते रहे ? उन्होंने इतना जागरण कैसे किया ? इसका रहस्य क्या है ? यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से व्यक्ति के मन को आन्दोलित कर देता है ।

आयुर्वेद में नींद आने के कई विकल्प उपलब्ध होते हैं—

श्लेष्मसमुद्भवा मनःशरीरश्रमसंभवा आगंतुकी ।

रोगानुवर्तिनी रात्रौ स्वभावप्रभवा ॥

१. कफ वृद्धि ।
  २. शरीर और मन का श्रम ।
  ३. आगंतुकी—विकृतिजन्य ।
  ४. रोगानुवर्तिनी—रोग से पैदा होने वाली ।
  ५. स्वाभाविकी—रात्रि में स्वभाव से आने वाली ।
- चरक में कहा गया है—

यदा तु मनसि क्लान्ते, कर्मात्मानः कल्मान्विताः ।  
विषयेभ्यो निवर्तन्ते, तदा स्वपिति मानवः ॥

### अनिद्रा : कारण

आयुर्वेद में नींद न आने के, अनिद्रा के, भी कई कारण बतलाए गए हैं—

१. वात का प्रकोप
२. पित्त का प्रकोप
३. मानसिक तनाव
४. अभिघात
५. दिल पर अचानक चोट लगना ।
६. धातुक्षय ।

### नींद का विकल्प

महावीर के न वात का प्रकोप था, न पित्त का प्रकोप था और न मानसिक तनाव या आघात का प्रश्न था । वे इन सबसे मुक्त थे । उन्हें अनिद्रा की बीमारी नहीं थी फिर भी उन्होंने अनिद्रा का जीवन जीया, जागरूकता का जीवन जीया । महावीर निरन्तर जागरूक बने रहे, इसका रहस्य है—उन्होंने नींद का विकल्प खोज लिया ।

जो आदमी नींद का विकल्प नहीं खोज पाता है, उसे नींद बहुत सताती है । अगर व्यक्ति नींद का विकल्प खोज लेता है तो नींद की स्थिति कमजोर बन जाती है । महावीर के पास विकल्प था—भीतर की जागृति । जो व्यक्ति भीतर में जागना सीख लेता है, वह नींद को कमजोर बनाने में सफल हो जाता है । महावीर भीतर में जागरूक बन गए । महावीर जैसा आत्मा-जागृत व्यक्तित्व साधना के क्षेत्र में दुर्लभ है । वे निरन्तर एक ही ध्यान में, केवल आत्मा के ध्यान में निमग्न थे । उन्होंने आत्मा के साथ इतनी एकाग्रता स्थापित कर ली, नींद को अवकाश ही बहुत कम मिला । जब नींद को अवकाश मिलता, महावीर आत्मा के साथ जुड़ जाते । आत्मा के साथ

जुड़ जाना नींद का एक विकल्प है। इस विकल्प से नींद को जीता जा सकता है।  
**नींद और महावीर**

भगवान् महावीर शरीर का श्रम भी करते थे। बहुत सारे साधक आश्रम बनाकर बैठ जाते हैं, बिल्कुल निवृत्त होकर बैठ जाते हैं। महावीर की सारी साधना इसके विपरीत थी। महावीर एक स्थान पर कहीं नहीं टिके। वे बीहड़ जंगलों में गए, श्मशान और शून्यागारों में घूमे, अनार्य-देशों में परिव्रजन करते रहे। उनके शरीर का श्रम बहुत रहा किन्तु मन का श्रम बिल्कुल नहीं रहा।

नींद आने के दो मुख्य कारण हैं—शरीर का श्रम और मन का श्रम। शायद शरीर से भी अधिक मन का श्रम नींद का कारण बनता है। महावीर के मानसिक श्रम का कोई कार्य नहीं था। उन्होंने न पढ़ाई की और न किसी को गुरु बनाया। न कुछ सोचना और न कुछ चिंतन करना। मानसिक तनाव को पनपने का कोई अवकाश ही नहीं था। यदि शरीर और मन के श्रम के साथ नींद का सम्बन्ध पचास प्रतिशत जोड़ें तो पचास प्रतिशत नींद स्वतः विजित हो गई। उनके मन का कोई श्रम नहीं था इसलिए मन के श्रम से जो नींद आती थी, वह समाप्त हो गई।

### विलक्षण बात

शरीर के श्रम का संदर्भ लें। महावीर ने शरीर श्रम को भी अश्रम में बदल दिया। उन्होंने कायोत्सर्ग द्वारा शरीर का शिथिलीकरण कर दिया, तीस प्रतिशत नींद और विजित हो गई। शेष रही बीस प्रतिशत नींद। भगवान् महावीर ने बारह वर्षों में एक दिन भी सुख से रोटी नहीं खाई। इसका अर्थ है—जो रोज आराम से खूब खाता है, उसे नींद अधिक सताती है। साधनाकाल में महावीर अकेले थे। न साधु-साध्वियां थीं, न श्रावक थे और न श्राविकाएं थीं। पूरा खाना ही नहीं खाया तो नींद कैसे आती? इससे दस प्रतिशत नींद पर नियंत्रण हो गया। सौ प्रतिशत में से केवल दस प्रतिशत शेष रहा। हम जानते हैं—जिसकी नब्बे प्रतिशत शक्ति चली जाती है, केवल दस प्रतिशत शक्ति शेष रहती है उसकी क्या स्थिति होती है? नींद की शक्ति क्षीण हो गयी। नींद को स्थान वे देते हैं जो भर-पेट भोजन करते हैं, शरीर और मन का श्रम करते हैं। महावीर अलबेले योगी थे। नींद के लिए उनके पास कोई स्थान नहीं था। निद्रा के सम्भावित कारणों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है—भगवान् ने निद्रा के कारणों को ही मिटा डाला।

भगवान् महावीर बारह वर्ष में एक मुहूर्त से अधिक नहीं सोए, यह सुनकर

आश्चर्य हो सकता है। यदि छह महीने भी नींद न आए तो आदमी पागल बन जाता है। बारह वर्ष तक न सोए और प्रभुत्व, प्रसन्नता तथा शक्ति बनी रहे, यह एक विलक्षण बात है। महावीर की साधना का यह एक अद्भुत प्रयोग है।

### संयम और जागरण का सिद्धांत

यदि हम निद्रा और अतिनिद्रा के कारणों से बचें तो नींद की संभावना से बचा जा सकता है। सामान्य आदमी न अनिद्रा की स्थिति में जीता है और न अतिनिद्रा की स्थिति में जीता है। वह निद्रा की सामान्य स्थिति में जीता है। निद्रा की सामान्य स्थिति सबके लिए समान नहीं होती। एक आदमी आठ-दस घंटे नींद लेता है फिर भी उसका सिर भारी बना रहता है और एक व्यक्ति दो-तीन घंटे सोकर भी आराम से उठ जाता है, तरोताजा बन जाता है। आहार और नींद ये दोनों व्यक्तिगत बातें हैं। आहार और नींद की आवश्यकता को एक तराजू में नहीं तौला जा सकता। यह नहीं कहा जा सकता—इतना सोना चाहिए और इतना नहीं, इतना खाना चाहिए और इतना नहीं। किंतु अतिभोजन और अतिनिद्रा से अवश्य बचना चाहिए। यह संयम और जागरण का सिद्धांत है। सोने के साथ सोने का विवेक ज़रूरी है।

### जरूरी है विवेक

महावीर के जीवन दर्शन से एक महत्वपूर्ण सूत्र फलित होता है—आवश्यक और अनावश्यक का विवेक। यह एक मूल्यवान् सूत्र है, जो समाज के लिए भी उपयोगी लगता है। आवश्यक और अनावश्यक—इसका अर्थ है—अर्थ और अनर्थ का विवेक। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इस सूत्र को लागू किया जा सकता है। व्यक्ति में यह दृष्टि जाग जाए—मैं अमुक कार्य प्रयोजन के साथ कर रहा हूँ और अमुक कार्य निष्प्रयोजन से कर रहा हूँ। इस विवेक का जागरण जीवन की सफलता का बहुत बड़ा सूत्र बनता है।

लाला लाजपतराय के पास एक व्यक्ति चंदा लेने गया। प्रसंग ऐसा बना—वे घूमने के लिए जा रहे थे। कोचवान घोड़ा जोत रहा था। साथ में एक नौकर था। लालाजी ने नौकर से कहा—लालटेन भी जला दो। नौकर माचिस की डिब्बी लाया। तिली निकाली। उसे जलाया किन्तु तिली लालटेन जलने से पूर्व ही बुझ गई। तीन-चार बार ऐसा हुआ। लाला लाजपतराय नौकर पर उबल पड़े। चंदा मांगने आया व्यक्ति यह देखकर दंग रह गया। उसकी चंदा मांगने की हिम्मत ही नहीं हुई। लाला लाजपतराय घोड़ी पर चढ़े और आगन्तुक से बोले—आप भी आएँ। आप कैसे आए हैं ?



नहीं ! ऐसे ही आ गया ।

आप आए हैं तो आने का कारण बताएं ।

मैं आपके पास चंदा मांगने आया था पर अब इच्छा नहीं है ।

इच्छा क्यों नहीं है ? क्या बात है ? आपको क्या जरूरत है ?

आगन्तुक ने सारी बात बतलाई ।

लालाजी ने तत्काल दस हजार रुपये का अनुदान दे दिया ।

आगन्तुक विस्मय से भर गया । उस जमाने में दस हजार रुपये भी बहुत मूल्य रखते थे । आगन्तुक से रहा नहीं गया । उसने कहा—लालाजी ! एक बात पूछना चाहता हूं । आपने दो-तीन तीलियों के लिए नौकर को डांट दिया और मुझे एक साथ दस हजार रुपये दे दिए । मैं आपके इस व्यवहार का रहस्य नहीं समझा ।

लालाजी बोले—तुम जानते नहीं हो । मुझे फिजूलखर्ची एक पैसा भी बर्दाश्त नहीं है और जहां आवश्यकता है, वहां दस हजार की जगह लाख लग जाएं तो भी चिंता नहीं है ।

### जागरूकता का निदर्शन

यह जीवन का एक बड़ा सूत्र है । आज इस बात को लोग पकड़ नहीं पा रहे हैं । यदि यह सूत्र पकड़ में आ जाएं तो अनेक समस्याएं हल हो जाएं । महावीर के जीवन-दर्शन से व्यवहार का यह सूत्र प्रस्फुटित होता है— आवश्यकता और अनावश्यकता का विवेक, अर्थ और अनर्थ का विवेक । भगवान् महावीर ने इस तथ्य को समझा था—मेरे लिए कितनी नींद लेना आवश्यक है और कितनी नींद लेना अनावश्यक । इस आधार पर भगवान् महावीर ने अपने जीवन की पूरी चर्या बनाई और वे उस चर्या के अनुरूप चलते रहे । महावीर के सामने अतिनिद्रा का प्रश्न नहीं था और अनिद्रा का प्रश्न भी नहीं था । महावीर की नींद न नींद थी, न अनिंद थी किंतु जागरूक नींद थी । वे जब चाहा वे सो गए । अन्तर्मुहूर्त्त नींद भी उन्होंने एक साथ नहीं ली । कभी दो क्षण नींद ली, कभी चार क्षण नींद ली । वे एक साथ अधिक नहीं सोए । अगर कोई डायरी लिखने वाला होता, नींद का समय और स्थान लिखने वाला होता तो अन्तर्मुहूर्त्त की नींद के विवरण से शायद पूरी डायरी भर जाती । यह महावीर की जागरूकता का निदर्शन है ।

### समाधान है कायोत्सर्ग

महावीर का जीवन-दर्शन जागरूकता का जीवन-दर्शन है । उन्होंने जागरूकता

के अनेक प्रयोग किए। जो व्यक्ति अच्छा कायोत्सर्ग करना जानता है वह नींद की पूर्ति कर सकता है। अच्छे ध्यान से भी नींद की पूर्ति हो सकती है। यह भी माना जाता है—जब शरीर में लाल रंग ज्यादा होता है, नीला रंग कम हो जाता है अथवा नीला रंग ज्यादा और लाल रंग कम हो जाता है तब नींद का संतुलन गड़बड़ा जाता है। यदि दोनों रंगों का संतुलन बना रहे—लाल रंग और नीला रंग संतुलित रहे तो नींद का संतुलन बना रहता है। इसका संतुलन नींद को असंतुलित बना देता है।

वर्तमान युग नींद की बीमारी से ग्रस्त है। नींद की बीमारी वालों के लिए महावीर का यह दर्शन बहुत उपयोगी हो सकता है। प्रेक्षाध्यान शिविर में तपामंडी का एक वकील भाग ले रहा था। उसका चेहरा निस्तेज और मुरझाया हुआ लग रहा था। उसने दस दिन तक कायोत्सर्ग का सघन अभ्यास किया। शिविर की सम्पन्नता पर अपने अनुभव सुनाते हुए उसने कहा—मैं बाईस वर्ष से अनिद्रा की बीमारी भुगत रहा था। नींद की गोलियां खाने पर भी अच्छी नींद नहीं आती थी। मुझे कोई स्थायी समाधान नहीं मिला। लेकिन आज मुझे इस बीमारी का अचूक समाधान उपलब्ध हो गया है।

### आकर्षण की दिशा बदलें

कायोत्सर्ग नींद की बीमारी का बहुत बड़ा समाधान है। श्वास प्रेक्षा और शरीर प्रेक्षा भी उसका एक समाधान है। नीले रंग और लाल रंग के संतुलन का प्रयोग भी नींद की समस्या से मुक्ति का सशक्त उपाय है। यदि जागरूकता का सूत्र हाथ में आ जाए तो निद्राजन्य बीमारियों की समाप्ति का सूत्र उपलब्ध हो जाए। महावीर जैसे जागरूक तीर्थंकर को जानने-समझने वाले व्यक्ति जागरूकता के सूत्र को न अपनाएं, यह आश्चर्य की बात है। हम आचार्यश्री तुलसी के जीवन से भी जागरूकता का पाठ पढ़ सकते हैं। आचार्यश्री का आहार, नींद और आसन पर जो नियन्त्रण है, वह सचमुच अनुकरणीय है। यदि नींद के प्रति आकर्षण कम हो जाए, आकर्षण की दिशा बदल जाए, तो निद्रा संयम की दिशा में प्रस्थान संभव बन सकता है। जब तक स्वाध्याय, ध्यान, आत्मचिन्तन आदि के प्रति आकर्षण नहीं होगा तब तक दिशा नहीं बदलेगी। आज जरूरत है दिशा बदलने की। यदि हमें निद्रा के प्रति जागरूक होना है तो आकर्षण की दिशा को बदलना होगा। आकर्षण की दिशा को बदलना ही जागरूकता है। दिशा परिवर्तन का अर्थ है—निद्रा संयम, निन्द्राविजय की दिशा में प्रस्थान।

## वर्धमान : परीषहों के घेरे में

### अनार्य प्रदेश में विहार क्यों ?

भगवान् महावीर का साधना-काल चल रहा था। साधना करते-करते उनके मानस में एक संकल्प जागा। उन्होंने बंगाल प्रान्त के उस भाग की ओर प्रस्थान कर दिया, जहां अशिष्ट और जंगली आदिवासी लोग रहते थे। प्रश्न पैदा हुआ—भगवान् वहां क्यों गए ? हमारे पुराने व्याख्याकार समाधान देते हैं—कर्मों की बहुत निर्जरा करनी थी इसलिए महावीर ने कष्टों को झेलने के लिए अनार्य प्रदेश में विहार किया। यह एक समाधान है, एक दृष्टिकोण है। जो भाष्यकार और व्याख्याकार होता है, उसका अपना दृष्टिकोण भी उसके साथ जुड़ता है। यह एक उद्देश्य हो सकता है किन्तु एक ही उद्देश्य हो, यह नियम नहीं बनाया जा सकता था। इसके साथ और बातें भी खोजी जा सकती हैं। कर्म की निर्जरा के और बहुत स्थान हो सकते थे। इसके लिए बहुत कुछ किया जा सकता था। उधर जाने का दूसरा उद्देश्य भी हो सकता है। यह क्यों न माना जाए—महावीर के मन में एक संकल्प जागा, उन्होंने एक प्रयोग किया—जो लोग असभ्य हैं, उन्हें ध्यान के द्वारा बदला जाए। बदलने में महावीर का बहुत विश्वास था। ध्यान एक प्रयोग है बदलने का। संभव है—भगवान् महावीर के मन में दूसरों को बदलने का संकल्प जागा हो। उस समय की घटनाओं को देखने से इस संभावना को बल मिलता है।

### संभावना का आधार

भगवान् बुद्ध के समय की घटना है। एक राजा बहुत क्रूर था। किसी व्यक्ति ने बुद्ध के प्रमुख शिष्य से आकर कहा—महाराज ! अमुक राजा बहुत क्रूर है। उसे आज तक कोई नहीं बदल पाया। यदि आप चाहें तो उसे बदल सकते हैं। आनन्द ने उसके अनुरोध को स्वीकार कर लिया। उन्होंने नगर के बाहर उद्यान में खड़े-खड़े ध्यान प्रारम्भ कर दिया। पहले पूर्व दिशाभिमुख होकर ध्यान किया। उसके बाद पश्चिम दिशा में, फिर उत्तर और दक्षिण दिशा में ध्यान किया। नगर के चारों ओर ध्यान करने का परिणाम हुआ—राजा का हृदय बदल गया, राजा कोमल और सद्-

व्यवहार से परिपूर्ण बन गया ।

उस समय ऐसे प्रयोग चलते थे । क्रूर और अशिष्ट व्यक्तियों को बदलने की एक पद्धति रही है । हो सकता है—भगवान् महावीर के मन में भी यही भावना जागी हो । भगवान् महावीर ने सोचा होगा—मेरे कल्याण के साथ-साथ उनका भी कल्याण हो जाए । अनार्य देशों में जाने का यह भी एक कारण हो सकता है और यह कारण बहुत संगत प्रतीत होता है ।

### निःशस्त्र और अकेले

महावीर यह जानते थे—वे लोग असभ्य हैं, अशिष्ट हैं । उन लोगों के बीच अकेले जाना कोई हंसी-खेल नहीं था । महावीर के अलावा दूसरे लोग भी वहां जाते थे । जैसे आजकल पहाड़ी क्षेत्रों में ईसाई लोग अपना कार्य करने के लिए जाते हैं वैसे ही अन्य धर्मों को मानने वाले भी उस समय वहां जाते थे, उन्हें समझते थे । उस संधाल परगना क्षेत्र में दूसरे धर्म के संन्यासी गए थे पर वे अकेले नहीं गए । वे साथ में मिलकर गए, हाथ में लाठियां लेकर गए क्योंकि वहां के कुत्ते बड़े खूंखार थे । एक उद्देश्य था—लोगों को अपनी-अपनी बात समझाना । भगवान् महावीर का जाना कुछ अलग प्रकार का था । वे अकेले थे, निःशस्त्र थे । उनका अतीत भी इसी प्रकार की घटना से संवलित था ।

### अतीत का प्रसंग

जब भगवान् महावीर त्रिपृष्ठ के जीव में थे तब उन्होंने सिंह का वध किया । उस समय महावीर रथ में बैठकर शिकार करने गए और जंगल में जाकर रथ से नीचे उतर गए । उन्होंने सैनिकों से पूछा—सिंह पैदल चल रहा है या वाहन पर ?

पैदल चल रहा है ।

उसके पास कौन-सा हथियार है ?

कोई शस्त्र नहीं है ।

मैं भी शस्त्र नहीं रखूंगा ।

महाराज ! यह आप क्या कर रहे हैं ?

निहत्थे व्यक्ति पर शस्त्र प्रयोग न्यायोचित नहीं है ।

उन्होंने फिर पूछा—सिंह का परिवार कितना है ?

महाराज ! वह अकेला है । उसके साथ कोई नहीं है ।

तुम सब यहीं रुक जाओ। मेरे साथ कोई नहीं जाएगा।

त्रिपृष्ठ ने सब सैनिकों को वहीं छोड़ दिया। वे सिंह का सामना करने के लिए अकेले ही चल पड़े, निःशस्त्र चल पड़े। निर्जन और भयानक वन में उनके साथ कोई सुरक्षा व्यवस्था नहीं थी। यह था उनका पराक्रम।

### महत्त्वपूर्ण प्रश्न

महावीर असभ्य लोगों के बीच एक विशेष उद्देश्य और लक्ष्य के साथ गए थे। उनका उद्देश्य था—अपनी साधना के द्वारा दूसरों को भी प्रतिबोध मिले और ऐसी कोई चेतना जागे जिससे अहिंसा, मैत्री और करुणा का बीज उग जाए। वहां जाने के बाद जो घटित हुआ, वह अज्ञात नहीं है। कितने कष्ट आए, कितने घोर परीषह आए, कितनी विपत्तियां आईं, किन्तु महावीर अविचल बने रहे। प्रश्न होता है—एक आदमी इतने कष्टों को कैसे सह सकता है? क्या कोई आदमी इतने कष्ट सह सकता है?

आज का युग एक विचित्र युग है। आज जितने विषयों पर वैज्ञानिक खोज कर रहे हैं, उनकी गणना करना कठिन है। उनमें एक विषय है—आदमी पीड़ा को कैसे सहन करता है? इस पर बड़े-बड़े अनुसंधान चल रहे हैं, पीड़ानाशक दवाइयां चल रही हैं और भी ऐसी बहुत सारी दवाइयां खोजी जा रही हैं, जिससे दर्द का आभास ही न हो। इनकी खोज के कारण ही बड़े-बड़े ऑपरेशन सफल हो रहे हैं। डॉक्टर ऑपरेशन में शरीर के अवयवों को काट देते हैं, अलग कर देते हैं, उन्हें पुनः जोड़ देते हैं किन्तु रोगों को कुछ भी पता नहीं चलता।

### वर्तमान प्रयत्न

हमारे शरीर में सूचना-केन्द्र है—मस्तिष्क। शरीर के किसी भी अवयव में दर्द होता है या इन्जेक्शन दिया जाता है तो उसकी सीधी सूचना-केन्द्र को जानकारी मिलती है और दर्द का अनुभव होता है। उस पर नियन्त्रण कर लिया जाए तो दर्द की अनुभूति समाप्त हो जाए। पैर में चोट लगती है पर उस चोट का दर्द पैर में नहीं होता। चोट लगने पर सबसे पहले मस्तिष्क में संदेश पहुंचेगा। विद्युत् रासायनिक प्रक्रिया उस संदेश को ले जाती है और उसके सूचना-केन्द्र पर पहुंचने के बाद दर्द का अनुभव होता है। आज ऐसे उपाय खोजे जा रहे हैं कि वह संदेश दर्द के स्थान पर पहुंच ही न पाए। हमारी रीढ़ की हड्डी के भीतर संदेश प्रणालियां हैं। ऐसा उपाय किया जाए, जिससे वह संदेश वहां तक न पहुंच पाए। यदि संदेश पहुंच जाए तो

ऐसी मानसिक क्रिया का प्रयोग किया जाए, उससे ऐसा रसायन पैदा किया जाए, जो कष्ट देने वाले रसायनों को बीच में ही रोक दें।

### सफलता का सूत्र : आस्था

पीड़ा अनुसंधान केन्द्र के एक अध्यक्ष ने लिखा—यदि हम रोगी का विश्वास, तनाव मुक्ति, उत्साह और आनन्द की भावना से भर सकें तो उसकी पीड़ा की अनुभूति से साठ-सत्तर प्रतिशत तक का अन्तर आ सकता है। दो रोगियों में समान पीड़ा है। ऐसी स्थिति बन सकती है—एक व्यक्ति तीस प्रतिशत बीमारी भोगेगा और दूसरा व्यक्ति सौ प्रतिशत। आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में कहा गया है—रोगी को सहानुभूति चाहिए। उसे विश्वास दिलाया जाए—उसे कोई कष्ट नहीं है। तुम बिल्कुल ठीक हो जाओगे। चिन्ता की कोई बात नहीं है, कोई खतरा नहीं है। रोगी को प्रोत्साहित किया जाए, विश्वास और आस्था को पैदा किया जाए और ऐसी भावना भरी जाए, जिससे उसका मनोबल बढ़े। यदि ऐसा होता है तो रोगी बड़ी से बड़ी पीड़ा को सहजभाव से सहन कर लेता है। यदि चिकित्सक कहे—तुम कैसे ठीक होओगे? तुम्हारी बीमारी असाध्य है, बड़ा खतरा है। इस प्रकार की भावना से दस प्रतिशत पीड़ा भी सौ प्रतिशत बन जाती है। आस्था और विश्वास से बहुत अन्तर आ जाता है। जो चिकित्सक आस्था और विश्वास पैदा करना जानता है, वह चिकित्सा से पूर्व ही पचास प्रतिशत सफल हो जाता है। जो ऐसा करना नहीं जानता, वह मुश्किल से सफल होता है।

### रहस्य क्या है ?

विश्वास पैदा करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। हम स्वयं ऐसा अनुभव करते हैं। जब व्यक्ति बीमार या रोगी होता है, अनशन या तपस्या करता है तब उसे आराधना सुनाई जाती है। वह उसे सुनकर झूमने लग जाता है। उन क्षणों में ऐसा लगता है—कोई कष्ट ही नहीं है। इस प्रकार के रसायन पैदा होते हैं, जो वेदना की अनुभूति कराने वाली तंत्रिका के कार्य में बाधा पहुंचाते हैं। उस स्थिति में पीड़ा का अनुभव होता ही नहीं है। कई व्यक्तियों को पहले बड़ा कष्ट होता किन्तु जब उन्हें आराधना सुनाई जाती तब ऐसी स्थिति बन जाती, जिससे सारा कष्ट समाप्त हो जाता है। काशी नरेश की बात प्रसिद्ध है। जब उनका ऑपरेशन हो रहा था तब उन्होंने कहा था—मुझे बेहोश करने की जरूरत नहीं है। आप मुझे गीता दे दीजिए। जब मैं उसे पढ़ने में लीन हो जाऊं तब आप ऑपरेशन कर देना। हमारे सामने ऐसी अनेक

घटनाएं हैं पर ऐसा कैसे हो सकता है? इसका रहस्य क्या है? महावीर के जीवन के संदर्भ में इसकी मीमांसा करना आवश्यक है।

**कष्ट कब होता है?**

भगवान् महावीर ने काया का व्युत्सर्ग कर दिया, शिथिलीकरण कर दिया। कष्ट तब होता है जब आदमी शरीर में रहता है। जब आदमी शरीर को छोड़कर आत्मा में चला जाता है तब सारा कष्ट समाप्त हो जाता है। यह आत्मा में चले जाने की चाबी जिसको मिल जाती है, जो शरीर को छोड़कर आत्मा में प्रवेश करने की विधि सीख लेता है, उसके सारे कष्ट समाप्त हो जाते हैं। भगवान् महावीर के लिए एक महत्त्वपूर्ण शब्द का प्रयोग हुआ है—**पणयासी**। वे अपनी आत्मा के प्रति प्रणत-समर्पित हो गए। आत्मा ही उनका गुरु और आत्मा ही उनका परमात्मा था। उनके लिए आत्मा ही सब कुछ था। महावीर के लिए आत्मा के सिवाय और कुछ नहीं था। उनके सामने केवल आत्मा थी। ऐसी स्थिति में शरीर सताने की स्थिति में ही नहीं रहा। हमें लगता है—महावीर को इतने कष्ट हुए पर उन्हें उनका आभास भी नहीं हुआ। यदि उन्हें कष्ट का आभास होता तो वे जीवित ही नहीं रह पाते। वे उस अमरत्व के पास पहुंच गए थे, जहां मृत्यु जैसी कोई चीज रही ही नहीं। अन्यथा उन कष्टों में अविचल रहना सहज नहीं था। जो व्यक्ति आत्मा के भीतर चला जाता है, उसे कोई विचलित नहीं कर पाता।

**आत्मा की सन्निधि**

दक्षिण भारत की घटना है। एक साधु खड़े-खड़े ध्यान कर रहे थे। वहीं चरवाहे पशुओं को चरा रहे थे। उन्होंने देखा—एक काला सांप साधु की ओर बढ़ रहा है। चरवाहों ने मुनि को विषधर से बचने के लिए आग्रह किया। साधु ध्यान में तल्लीन बने हुए थे। सांप साधु के पास आया उनके पैरों में काटने लगा। वह काटते-काटते थक गया, अपने स्थान पर चला गया। साधु वैसे ही अडिग और अडोल खड़े रहे। चरवाहे देखते रहे। उन्होंने सोचा—जहर चढ़ रहा है। साधु अब गिर जाएंगे। आश्चर्य था—साधु वैसे ही खड़े थे। ध्यान पूरा हुआ। लोगों ने कहा—महाराज ! सांप आया था।

सन्त बोले—आया होगा।

सांप ने आपको काटा था।

काटा होगा।

क्या आपको पता नहीं चला ?

मुझे पता नहीं चला ।

क्या जहर नहीं चढ़ा ।

नहीं ! मैं अपनी आत्मा में था । शरीर में क्या हो रहा था, उसका मुझे पता ही नहीं चला ।

जब व्यक्ति समाधि की मुद्रा में, ध्यान की गहराई में, चला जाता है तब उस पर जहर का कोई असर नहीं होता । उस पर न वर्षा का असर होता है और न धूप का असर होता है ।

### विज्ञान के प्रयत्न

भगवान् महावीर शरीर में रहते हुए भी विदेह थे । हम लोग शरीर की वर्तमान अवस्था से घबराते हैं । आदमी अपनी-अपनी भूमिका को दूसरों पर लादना जानता है किन्तु वह यह नहीं सोचता कि मेरी भूमिका क्या है ? महावीर जिस भूमिका में थे, उनमें उन्हें कष्ट नहीं था । यदि कष्ट होता तो वे टिक नहीं पाते । हमारे भीतर बहुत रहस्य और नियम छिपे हुए हैं । हम उन्हें समझ नहीं पा रहे हैं । आज के पीड़ा अनुसंधान वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक कह रहे हैं—हम मानसिक दशा को बदलकर पीड़ा को बिल्कुल समाप्त कर सकते हैं । उनका विश्वास है—लोगों को ऐसा मानसिक प्रशिक्षण देंगे, जिसके द्वारा वे अपनी पीड़ा पर नियंत्रण करना सीख जाएंगे । ऐसी स्थिति में न अस्पताल जाने की जरूरत पड़ेगी, न दवा लेने की जरूरत रहेगी । क्या ये विधियां हमें डॉक्टर सिखाएंगे ? यह कार्य धर्म का है या डॉक्टरों का है ? यह अध्यात्म के लोगों का कार्य है कि वे ऐसी विधियां सिखाएं, जिससे पीड़ा को समभाव से सहा जा सके ।

### कष्टमुक्ति का मार्ग : भक्तिवाद

कष्टानुभूति में कमी लाने का एक महत्वपूर्ण उपाय है—भक्तिवाद । धर्म के क्षेत्र में भक्तिवाद का बहुत महत्व है । एक व्यक्ति पढ़ा-लिखा है, विद्वान् है, तार्किक है किन्तु उसमें भक्ति का रस नहीं है तो वह बहुत पीड़ा भोगेगा । पीड़ा की अनुभूति में ज्ञान काम नहीं आता । उसे भक्तिवाद से ही कम किया जा सकता है । वह एक ऐसा आलम्बन है, जो कष्ट की अनुभूति को कम कर देता है । आलम्बन के सहारे व्यक्ति सब कुछ सह लेता है । आस्था और श्रद्धा के सहारे बड़े-बड़े कष्ट अकिंचित्कर बन जाते हैं ।



महावीर ने कितने कष्ट सहे, यह जानना महत्वपूर्ण है किंतु इससे भी अधिक यह जानना महत्वपूर्ण है—उन्होंने कष्टों को कैसे सहा। महावीर ने कितने कष्ट सहे, इसे हम जान लेते हैं, किन्तु महावीर ने कष्ट कैसे सहे, इस बात को भुला देते हैं। महावीर ने कष्ट सहे, इससे हमें क्या मिलने वाला है? सहने के गुर क्या थे? वह कौन-सी चाबी थी, जिसके द्वारा यह ताला खोला गया? उन्हें कष्ट कष्ट नहीं लगा, वह आनन्द में बदल गया। यदि हम, इन सूत्रों को खोजने में सफल बनते हैं तो महावीर के जीवन से कुछ सीख सकते हैं। जिन लोगों ने इस दिशा में ध्यान केन्द्रित किया है, उन्होंने कष्टमुक्ति का मार्ग पाया है।

**श्रद्धा है आत्मा के सात जुड़ना**

राणावास चातुर्मास में प्रेक्षाध्यान का शिविर चल रहा था। श्रीडूंगरगढ़ की एक वृद्ध महिला असाम से उपासना करने के लिए आई। बहनों ने उनसे कहा—आप शिविर में भाग ले लें। उस वृद्ध महिला ने कहा—मेरा हाथ टूटा हुआ है। मैं शिविर में कैसे भाग ले सकती हूँ? मैंने सुना है—शिविर में अपना कार्य अपने हाथ से करना होता है और मैं पानी का गिलास भी नहीं उठा सकती। इस स्थिति में शिविर में रहना कैसे संभव है? बहनों ने कहा—यदि आपकी शिविर में रहने की इच्छा हो तो हम आपका सहयोग कर देंगी। बहनों के आग्रह पर वह वृद्ध महिला शिविर में रह गई। उस शिविर में भाव परिवर्तन के प्रयोग चले। प्रवचन का मुख्य विषय भी यही था। उस महिला ने चार-पांच दिन प्रवचन सुना, प्रयोग किए। उसमें आश्चर्यजनक परिवर्तन आ गया। जिन हाथों से वह गिलास नहीं उठा सकती थी, उन हाथों से वह कपड़े धोने लगी, चाकू से सब्जी काटने लगी, अपना सारा काम स्वयं करने में सक्षम बन गई। यह बात समझ से परे है किन्तु जो आंखों के सामने प्रत्यक्ष है, उसे कैसे नकारा जा सकता है?

जिसमें आस्था या संकल्प का बल जाग जाता है, जिसमें भक्ति और श्रद्धा का उत्कर्ष होता है, उसके रसायन बदल जाते हैं। श्रद्धा, आस्था, भक्ति और संकल्प का जागरण कष्टों को सहने की शक्ति देता है। अपनी आत्मा के साथ जुड़ जाना ही सच्ची श्रद्धा है। भगवान् महावीर अपनी आत्मा के प्रति समर्पित हो गए, उसके साथ जुड़ गए। उन्होंने कष्ट को सहन करने का, उन पर विजय प्राप्त करने का सूत्र हस्तगत कर लिया।

## संकल्प की धुनी पर तपा गया तप

व्यक्ति शरीर बल से कम जीता है, संकल्प बल से अधिक जीता है। संकल्प बल के बिना आदमी बहुत कष्टों को सहन नहीं कर सकता। एक पतला-दुबला आदमी भी भयंकर कष्टों को सहन कर सकता है और एक मजबूत शरीर वाला आदमी भी कष्टों को सह नहीं सकता, घुटने टेक देता है। शरीर की शक्ति है किन्तु उससे भी बड़ी शक्ति है मन की शक्ति, संकल्प की शक्ति। हम वर्तमान को देखें। महात्मा गांधी ने कम कष्ट नहीं सहे। वे शरीर से दुबले-पतले थे किन्तु उनका मनोबल बहुत दृढ़ था। जिस व्यक्ति ने अपनी संकल्पशक्ति को जगाया है, वह भयंकर से भयंकर तूफान का सामना कर सकता है। जिसका संकल्प बल जागृत नहीं होता, वह सामान्य कष्टों से भी घबरा जाता है। ऐसा लगता है—महावीर और संकल्प बल दो नहीं थे। संकल्प जन्म से ही उनका साथी बन गया था। संकल्प और व्रत में कोई दूरी नहीं है। जिसमें संकल्प शक्ति नहीं है, वह व्रती नहीं बन सकता। जो व्रती बनता है, उसकी संकल्प शक्ति बढ़ी हुई होती है। व्रत के साथ संकल्प शक्ति नहीं है तो व्रत कितना निभेगा! संकल्प शक्ति के अभाव में व्रत को निभाया नहीं जा सकता। वह बार-बार टूट जाता है। संकल्प का बल ही व्रत को बचाता है।

### नंदीवर्धन का प्रस्ताव : महावीर का संकल्प

भगवान् महावीर ने दीक्षा का संकल्प अभिव्यक्त किया। नंदीवर्धन ने कहा—कुमार ! माता-पिता छोड़कर चले गए और तुम अभी दीक्षा ले रहे हो, यह उचित नहीं है। सारा राज्य उनके शोक में डूबा हुआ है।

शोक कितने दिन चलेगा ?

दो वर्ष तक राजकीय शोक रहेगा।

दो वर्ष तक मुझे घर पर रहना पड़ेगा ? यह मेरे लिए बहुत कठिन है।

जिस व्यक्ति की आत्मा जाग जाती है, उसका घर में रहना मुश्किल हो जाता

है।

नंदीवर्धन ने प्रेमार्द्र स्वर में कहा—एक ओर माता-पिता का वियोग है, दूसरी

ओर तुम छोड़कर जा रहे हो, यह अच्छा नहीं होगा। मेरे लिए बहुत समस्याएं पैदा हो जाएंगी।

महावीर ने संकल्प की भाषा में कहा—मैं रह सकता हूँ किंतु अपनी शर्तों के साथ। मेरा संकल्प है—मैं जब तक घर में रहूंगा तब तक रात्रि भोजन नहीं करूंगा, सजीव भोजन नहीं करूंगा, ब्रह्मचारी रहूंगा, एकान्त में रहूंगा, शरीर की सुश्रूषा नहीं करूंगा। यदि आप इन शर्तों को स्वीकार करें तो दो वर्ष और रुक सकता हूँ।

नंदीवर्धन नहीं चाहते थे—राजकुमार वर्धमान इस रूप में राजमहल में रहे किंतु उन्हें महावीर के संकल्प के सामने झुकना पड़ा।

### संकल्पों की श्रृंखला

दो वर्ष बीते। संकल्प को नया आयाम मिला। महावीर ने मुनिव्रत स्वीकार करते हुए संकल्प किया—**सव्वं में पावकम्मं अकरणिज्जं**—आज से पाप कर्म मेरे लिए अकरणीय है। संकल्प की यह यात्रा आगे बढ़ी। महावीर वहां से प्रस्थान कर एक आश्रम में ठहरे। आश्रम में लम्बे समय तक प्रवास किया। एक दिन कुलपति के पास शिकायत आई—आपने किस व्यक्ति को आश्रम में रखा है। वह बिल्कुल लापरवाह और उदासीन है। वह अपनी झोंपड़ी की सुरक्षा भी नहीं रख सकता। गायें आती हैं और झोंपड़ी को चर जाती है। वह देखभाल नहीं करता है।

कुलपति ने महावीर से कहा—राजकुमार वर्धमान! आप संन्यासी बन गए हैं। कम से कम अपने घर की रखवाली कीजिए। एक चिड़ियां भी अपने घोंसले की रखवाली करती है। आप बिल्कुल भी ध्यान नहीं दे रहे हैं, यह अच्छी बात नहीं है। आप राजकुमार रहे हैं। आपको अधिक जागरूक रहना चाहिए। कुलपति यह कहकर चला गया। महावीर ने सोचा—मैं किसके प्रति जागरूक रहूँ? मेरे लिए यह संभव नहीं है। महावीर ने वहां से प्रस्थान कर दिया। उन्होंने संकल्प किया—जहां भी अप्रीतिकर स्थान है वहां मैं नहीं रहूंगा। जहां मेरे रहने से दूसरों के मन में अप्रीति पैदा हो, वहां न रहने का संकल्प करता हूँ।

उन्होंने और भी अनेक संकल्प किए—

- मैं हाथ में भोजन करूंगा।
- मैं गृहस्थ का अभिवादन नहीं करूंगा।
- प्रायः मौन रहूंगा।
- प्रातः ध्यान में लीन रहूंगा।

## संकल्प की प्रतिमा

महावीर का संकल्प-बल निरन्तर जागृत रहता था। ऐसा लगता है—कोई भी घटना सामने आती, महावीर का संकल्प एक नया रूप ले लेता। महावीर संकल्प की प्रतिमा बने हुए थे। उनका संकल्प भी इतना मजबूत होता, जिसे दुनिया की कोई शक्ति हिला नहीं सकती, तोड़ नहीं सकती। साढ़े बारह वर्ष के साधना-काल में उनके संकल्प को विचलित करने के लिए सैंकड़ों-सैंकड़ों प्रसंग प्रस्तुत हुए किन्तु महावीर कभी भी विचलित नहीं हुए। ऐसा एक भी प्रसंग नहीं बना—जब महावीर हार जाए और सामने वाला व्यक्ति जीत जाए। उनका संकल्प-बल सदा अटूट बना रहा। जिस व्यक्ति का संकल्प मजबूत होता है, वह कभी पराजित नहीं होता। पराजित वही होता है, जिसका संकल्प श्लथ होता है। जो सुबह एक संकल्प करता है और शाम को उसे भूल जाता है, बदल देता है, वह किसी भी कार्य में सफल नहीं हो सकता।

## संकल्प रात्रिक प्रतिमा का

हमारे विकास का सबसे शक्तिशाली साधन है—संकल्प। एक बार मन में संकल्प जागे, वह लौह की लकीर बन जाए, लक्ष्मण रेखा बन जाए, उसमें परिवर्तन की संभावना ही न आए तो सफलता का स्रोत फूट पड़ता है। लचीला होना बहुत अच्छा है। विचारों में लचीलापन और दृष्टिकोण की सापेक्षता बहुत अच्छी बात है किन्तु जहां चरित्र का प्रश्न है वहां लचीलापन बहुत खतरनाक होता है। संकल्प की दृढ़ता ही व्यक्ति को आगे बढ़ा सकती है। जिसका संकल्प मजबूत नहीं होता, उसके लिए बहुत खतरे पैदा हो जाते हैं। साधना के क्षेत्र में महावीर ऐसे अलौकिक पुरुष हुए हैं, जिनके संकल्प का कोई शानी नहीं है। महावीर एक बार शूलपाणी यक्ष के मन्दिर में खड़े हो गए। उन्होंने एक रात्रिक प्रतिमा का संकल्प स्वीकार कर लिया। कायोत्सर्ग के साथ संकल्प करना एक प्रतिमा है।

## घटना सागरचन्द्र की

राजकुमार सागरचन्द्र की घटना है। उन्होंने संकल्प किया—जब तक दीपक जलेगा, कायोत्सर्ग में रहूंगा। वे इस संकल्प के साथ कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़े हो गए। राजकुमार ने सोचा था—दीपक कितनी देर जलेगा। एक घंटे के बाद जब तेल खत्म हो जाएगा, तो दीपक बुझ जाएगा। घंटे भर बाद दीपक बुझने लगा। दासी चौकत्री खड़ी थी। उसने सोचा—महाराज ध्यान की मुद्रा में खड़े हैं, कहीं

दीपक बुझ न जाए। जैसे ही दीपक टिमटिमाने लगा, अन्तिम सांसों गिनने लगा वैसे ही दासी ने उसमें तेल भर दिया, पुनः प्राण का संचार कर दिया। स्नेह मिला, बुझता दीपक पुनः प्रदीप्त हो उठा। राजकुमार का कायोत्सर्ग लम्बा हो गया। उसने सोचा— अच्छा है, आज बहुत लम्बा कायोत्सर्ग हो जाएगा। दो घंटा बीता। दीपक टिमटिमाने लगा। दासी ने उसमें पुनः तेल भर दिया। राजकुमार सुकुमार था किन्तु उसका संकल्प बल सुकोमल नहीं था। रात भर न दासी सोई, न राजा सोए और न दीपक बुझा।

कभी-कभी ऐसी घटनाएं घटती हैं, व्यक्ति का संकल्प मजबूत बन जाता है, एक साथ सारी शक्तियां जाग जाती हैं। उस स्थिति से असंकल्पकाम व्यक्ति भी दृढसंकल्पी बन जाता है।

### पुजारी का भय

भगवान् महावीर का संकल्प था—मैं आज पूरी रात इस यक्ष मन्दिर में खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करूंगा। सांझ का समय था। पुजारी पूजा करने आया। उसने देखा—कोई संन्यासी ध्यान किए खड़ा है। उसने मन्दिर में पूजा की। वह पूजा कर जाने लगा। उसने संन्यासी से कहा—महाराज ! सूरज अस्त हो चला है, अंधेरा गहरा रहा है। आपको पता है—यह यक्ष का मन्दिर है। यहां रात को कोई रह नहीं सकता। अगर कोई भूला-भटका रह जाता है तो निकल नहीं सकता। वह अपने जीवन से हाथ धो लेता है। वह आता है स्वयं और उसे निकाला जाता है दूसरों के द्वारा, इसलिए आप कृपा कर ध्यान पूरा करें, गांव में चलें ! मैं आपके लिए अत्यन्त सुन्दर स्थान की व्यवस्था कर दूंगा। महावीर ने सुना-अनसुना कर दिया। पुजारी ने सोचा—बड़ी मुसीबत है। यह उत्तर ही नहीं दे रहा है। खतरे की बात पर भी यह कोई ध्यान नहीं दे रहा है। लगता है—यह कोई हठी आदमी है। वह गांव में गया। गांव के मुखिया लोगों को इकट्ठा किया। पुजारी ने उनसे कहा—यक्ष मन्दिर में एक संन्यासी ध्यान की मुद्रा में खड़ा है। बड़ा भव्य लगता है। अगर वह मर जाएगा तो हमारे गांव की बड़ी बदनामी हो जाएगी। हम सब चलें और उसको मनाकर ले आएँ। पुजारी गांव के मुखिया लोगों के साथ पुनः मन्दिर में आया। मुखिया लोगों ने कहा—संन्यासीजी ! यहां रहना खतरे से खाली नहीं है। आपको नहीं, हमें खतरा है। अगर आपको कुछ हो गया तो हमारा क्या होगा ? आप हमारी प्रार्थना स्वीकार करें, गांव में चलें। आपकी अच्छी व्यवस्था हो जाएगी।

## अभय मौन था

महावीर कुछ नहीं बोले। उन्हें कोई भय ही नहीं था। लोगों के मन में भय था। महावीर अभय थे। भय बोल रहा था। अभय मौन था। अभय को बोलने की जरूरत ही नहीं होती। किसी व्यक्ति ने यह भी कहा होगा—यह खंभा है, इसे क्या कहें। हमारा जो कर्तव्य था, वह हमने कर दिया। यदि यह नहीं मानता है तो इसकी चिन्ता हम क्यों करें? सब लोग थककर चले गए।

रात गहराई। यक्ष अपने अधिष्ठान पर आया। वह बहुत क्रूर था। उसने देखा—मन्दिर में कोई खड़ा है। उसने सोचा—यह कौन आ गया? उसने विकराल हाथी का रूप बनाया। भयंकर अट्टहास किया। सारा जंगल कांप उठा किंतु महावीर अप्रकम्प बने रहे। यक्ष ने सोचा—आदमी कमजोर तो नहीं है। उसने महावीर को इधर-उधर झकझोरा किन्तु विचलित करने में सफल नहीं हुआ। उसने भयंकर सर्प का रूप धारण किया। भीषण फुफकार की किन्तु महावीर अचल बने रहे। उसने महावीर को काटा, महावीर के मन में कोई विचलन पैदा नहीं हुई। उसने महावीर को विचलित करने के लिए अनेक भयंकर रूप निर्मित किए किन्तु वह अपने उद्देश्य में असफल ही रहा। वह हतप्रभ और स्तब्ध रह गया।

## संकल्प युद्ध की संकल्पना

महावीर जीत गए, यक्ष हार गया। संकल्प जीत गया, क्रूरता हार गई। संकल्प की जो ताकत है, हम उसे जानते नहीं हैं। हम संकल्प शक्ति की महिमा गाते हैं, व्याख्या करत हैं किन्तु उसका प्रयोग करना नहीं जानते। आजकल सैनिक-शक्ति से समृद्ध देश भी संकल्प-शक्ति के मार्ग पर आ गए हैं। रूस और अमेरिका के परामनोवैज्ञानिक परामानसिक शस्त्रों के निर्माण में लगे हुए हैं। अरबों डालर इस कार्य पर खर्च किए जा रहे हैं। सेनाओं के युद्ध में जीतने वाले का बहुत नुकसान होता है। उसमें लाखों आदमी मारे जाते हैं, भयंकर नरसंहार होता है। युद्ध अनेक समस्याओं को जन्म देता है। आज एक नई पद्धति विकसित हो रही है—संकल्प का युद्ध लड़ा जाए। एक ओर शत्रु का आक्रमण हो रहा है, दूसरी ओर प्रयोगशाला में वैज्ञानिक बैठे हैं, वे अपनी संकल्प शक्ति के सहारे संकल्प की तरंगों को छोड़ रहे हैं। वे संकल्प की तरंगें सामने वाली सेना की तरफ जा रही हैं और उन तरंगों के कारण सारे सैनिक मूर्च्छित होकर गिर रहे हैं। सेना बिल्कुल नाकाम बन रही है। वैज्ञानिक इस प्रयोग की दिशा में आगे बढ़ रहे हैं। रामायण में निद्रा-बाण का

प्रयोग मिलता है। एक ऐसा बाण छोड़ा गया, जिससे शत्रु सेना नींद की मुद्रा में सो गई, निकम्मी हो गई। यह संकल्प युद्ध की तैयारी, शत्रु सेना को निष्क्रिय बनाने का उपक्रम आज विकासोन्मुख है। अपने राष्ट्र की हानि न हो और सामने वाले राष्ट्र की शक्ति निष्क्रिय बन जाए, इस तथ्य पर संकल्प युद्ध की संकल्पना आधारित है।

### संकल्प कल्पवृक्ष है

आज संकल्प की शक्ति के सहारे जो काम विदेशों में हो रहा है उसे भारत के लोगों ने हजारों-हजारों वर्ष पहले पहचान लिया था। संकल्प के सहारे बहुत बड़ा काम किया जा सकता है। भारतीय साहित्य में एक बहुप्रयुक्त शब्द है—कल्पवृक्ष। पता नहीं आज कहाँ है कल्पवृक्ष। कम से कम हिन्दुस्तान में तो कहीं दिखाई नहीं दिया। यदि कोई कल्पवृक्ष होता, उसके नीचे बैठने से सारी कामनाएं पूरी हो जातीं तो सबसे पहले उसके नीचे मुख्यमंत्री और प्रधानमंत्री बैठते। उन्हें अपनी गद्दी छिन जाने का जो खतरा बना रहता है, यह खतरा कभी नहीं रहता। आज का कल्पवृक्ष कलियुग का कल्पवृक्ष है। अगर सतयुग का कल्पवृक्ष होता तो किसी शासक की कुर्सी छिन जाने का खतरा कभी नहीं होता। कहा जाता है—कल्पवृक्ष स्वर्ग में है, वह मनुष्य लोक में नहीं है। प्रश्न होता है—क्या संकल्प कल्पवृक्ष नहीं है? भारतीय संस्कृति में तीन शब्द बहुत विश्रुत हैं—कल्पवृक्ष, चिन्तामणि रत्न और कामधेनु। ये तीनों प्रत्येक व्यक्ति के भीतर हैं। जिसमें चिन्तन की शक्ति है, उसके पास चिन्तामणि रत्न है। जिसमें कामना की शक्ति है, उसके पास कामधेनु है। जिसमें कल्पना की शक्ति है उसके पास कल्पवृक्ष है। महावीर का कल्पवृक्ष शक्तिशाली बन गया। वह उनकी सारी कल्पनाएं पूरी कर देता।

### संकल्प का परिणाम

आचार्य हेमचन्द्र ने महावीर की स्तुति में लिखा—

पन्नगे च सुरेन्द्रे च, कौशिके पादसंस्पृशि ।

निर्विशेषमनस्काय, श्रीवीरस्वामिने नमः ॥

इन्द्र चरणों में नमस्कार कर रहा था और चण्डकौशिक नाग पैरों को डस रहा था। उन दोनों के प्रति, जिसका मन समान था, उस महावीर को मैं नमस्कार करता हूँ।

समता का विकास संकल्प के बिना नहीं हो सकता। समता का विकास तब

सम्भव बनता है जब व्यक्ति की संकल्प शक्ति जाग जाए। महावीर उस मार्ग पर जा रहे थे जिस पर चण्डकौशिक सर्प का निवास था। चरवाहों ने कहा—आप इस मार्ग पर न जाएं। यह मार्ग बहुत खतरनाक है। किन्तु महावीर नहीं माने। वे उसी मार्ग पर चलते रहे। चलने के साथ एक संकल्प जुड़ा हुआ था। संकल्प के साथ-साथ समता और मैत्री का प्रयोग जुड़ा हुआ था। महावीर अपने इस प्रयोग में सफल बने, चण्डकौशिक का जीवन बदल गया।

### संकल्प और हठ

जो आदमी अपने संकल्प पर अडिग रहता है, उसे हठी भी कहा जा सकता है। संकल्प और हठ कुछ सीमा तक एक ही हो जाते हैं। जिसमें हठ नहीं होता, वह शायद कोई काम का भी नहीं होता। हठ का होना जरूरी है, अपनी बात पर अड़ना भी जरूरी है। जो आदमी कहीं टिकना नहीं जानता, खड़ा होना नहीं जानता, वह अपने जीवन में कोई सार्थक काम नहीं कर पाता। लचीला होने का एक अवकाश होता है, एक क्षण होता है पर जिसमें अड़ने या दृढ़ रहने की शक्ति नहीं है, वह बहुत विकास नहीं कर पाता।

### महावीर का संकल्प : वर्तमान नियम

भगवान् महावीर के संदर्भ में अबहुबाई शब्द का प्रयोग बहुत हुआ है। भगवान् महावीर बहुत कम बोलते थे। उनका संकल्प था—मुझे ज्यादा नहीं बोलना है। अनावश्यक बोलना ही नहीं है और आवश्यकता होने पर भी बहुत कम बोलना है। उन्होंने खान-पान में भी संकल्प का प्रयोग किया। उन्होंने संकल्प किया—मुझे न भोजन करना है, न पानी पीना है। यह संकल्प एक दिन नहीं, एक मास नहीं, छः महीने तक चला। आज यह बात असंभव लग सकती है। आधुनिक चिकित्सा नियमों के अनुसार यह संभव नहीं है कि कोई व्यक्ति छः महीने तक न खाए, न पिए और जिंदा रह जाए। महावीर का संकल्प आधुनिक विज्ञान के इन नियमों से भी महान् था। उन्होंने संकल्प किया—जो मिले, वह खाना है। ऐसा नहीं है कि भगवान् महावीर स्वादिष्ट भोजन नहीं लेते थे। वे स्वादिष्ट भोजन भी लेते थे।

### संकल्प अचिकित्सा का

भगवान् महावीर भिक्षा के लिए गए। वे जिस घर में भिक्षा के लिए गए, उस घर में खाना नहीं बना था। घर की दासी ने कहा—भंते ! आप बहुत जल्दी पधार गए। रसोई बनी नहीं है। केवल बासी घयावल है। मैं उन्हें बाहर डालने जा रही



हूँ। क्या आप इन्हें लेंगे? महावीर के पास पात्र नहीं था। उन्होंने अपने हाथ आगे बढ़ा दिए। दासी ने चावल का दान दे दिया। महावीर ने बासी चावल खाकर अपनी तपस्या का पारणा किया। महावीर बहुत कम खाते थे। उन्होंने अपने साधनाकाल में कभी रोजाना भोजन नहीं किया। लम्बी तपस्या का पारणा भी रूखे-सूखे भोजन से होता। यह अन्वेषण का विषय है—महावीर ने अपने साधनाकाल में कितने दिन भोजन किया। साढ़े बारह वर्ष में उन्होंने एक वर्ष भी खाना नहीं खाया। महावीर ने संकल्प किया—मैं साधनाकाल में कोई चिकित्सा नहीं कराऊंगा। साधनाकाल में चिकित्सा कराने का कोई प्रसंग ही नहीं बना। महावीर साधनाकाल में बीमार बने ही नहीं।

### संकल्प : शक्ति का नियोजन

इस संदर्भ में एक बात पर ध्यान केन्द्रित करना जरूरी है। उपवास करना एक बात है, संकल्प के साथ उपवास करना दूसरी बात है। इस विषय पर ध्यान केन्द्रित होना चाहिए। हम ध्यान करें, उपवास करें या कायोत्सर्ग करें, उसके साथ एक संकल्प जुड़ा होना चाहिए। हम जिस संकल्प के साथ जो करेंगे, हमारी सारी ऊर्जा उसी संकल्प के साथ जुड़ेगी। अगर संकल्प नहीं किया, उपवास या कायोत्सर्ग कर लिया, उससे जो शक्ति बढ़ेगी, ऊर्जा बढ़ेगी, उसका प्रयोग दूसरी दिशा में भी हो सकता है। बिना संकल्प ऊर्जा का प्रवाह दूसरी दिशा में बह जाता है। किसी व्यक्ति ने कहा—आप यहां बैठे-बैठे क्या कर रहे हैं? यह सुनकर व्यक्ति गुस्से से भर गया। उसकी ऊर्जा का नियोजन गलत दिशा में हो गया। कहते हैं—तपस्वी को क्रोध ज्यादा आता है। तपस्वी के आग बढ़ती है, ऊर्जा बढ़ती है। तपस्वियों ने बड़े-बड़े अभिशाप दिए हैं क्योंकि उन्होंने अपना कोई संकल्प नहीं बनाया। महावीर ने सबसे पहले संकल्प का चुनाव किया। उनके सामने यह संकल्प बराबर बना रहा—**सब्सं में पावकम्भं अकरणिज्जं**। उन्होंने अपनी सारी ऊर्जा इसी में लगा दी। महावीर ने जो तप तपा, वह संकल्प की भूमि पर तपा। उनके क्रोध और अहंकार शांत हो गए, उनकी सारी ऊर्जा शांति की दिशा में प्रवाहित हो गई। महावीर समता, अहिंसा, मैत्री और प्रेम के प्रतिमान बन गए। अपेक्षा है—प्रत्येक व्यक्ति अपनी संकल्पशक्ति को जगाए, महावीर का अनुयायी ही नहीं, महावीर बनने का प्रयत्न करे। यदि ऐसा होता है तो महावीर की संकल्प शक्ति हमारे जीवन की उदात्त प्रेरणा बन पाएगी।

## वर्धमान : प्रेक्षा के प्रयोग

पत्नी ने पति से पूछा—आप क्या कर रहे हैं ?

पति ने उत्तर दिया—मैं मोमबत्ती ढूँढ रहा हूँ ।

क्या मोमबत्ती नहीं मिल रही है ?

नहीं मिल रही है ।

लाइट जलाकर देख लें ।

लाइट नहीं है इसलिए मोमबत्ती को खोज रहा हूँ । अगर बिजली होती तो मोमबत्ती को ढूँढने की आवश्यकता ही क्या थी ?

जब जब बिजली चली जाती है, तब तब मोमबत्ती की आवश्यकता होती है, दीपक और लालटेन जलता है । बिजली की विद्यमानता में इनकी आवश्यकता नहीं होती ।

### चौथी आंख

प्रत्येक आदमी के पास अपना एक प्रकाश है, बिजली है और दूसरा है मोमबत्ती या लालटेन का प्रकाश । अन्दर का प्रकाश हमारी विद्युत् है । आंख का प्रकाश बाहरी प्रकाश है । दुनिया में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जिसके पास अपना प्रकाश न हो । जिन लोगों के पास आंख का प्रकाश नहीं है, उनके पास भी अपनी भीतर की आंख है, तीसरी आंख है । एक कवि के शब्दों में चौथी आंख भी है । एक न्यायाधीश के चार आंखें होनी चाहिए । वह दो आंखों से बाहर देखे और दो आंखों से भीतर देखे, जिससे कि वह न्याय कर सके—

सुण हाकम संग्राम, आंधो मत हूँ यार ।

औरा रे दो चाहिजै, थारे चाहिजै चार ॥

### देखने के दो प्रकार

प्रत्येक आदमी के पास आंख है । जो आदमी दृष्टिसम्पन्न नहीं होता है, वह बहुत खतरनाक बन जाता है । बाहरी आंख का काम भी देखना है और भीतर की

आंख का काम भी देखना है। देखना दो भागों में विभक्त हो गया—भीतर की आंख से देखना और बाहर की आंख से देखना। भीतर की आंख से देखना बिजली का प्रकाश है। बाहर की आंख से देखना मोमबत्ती या दीपक का प्रकाश है। जब बिजली नहीं होती तब मोमबत्ती, दीपक या लालटेन का उपयोग भी करना पड़ता है। आवश्यकता है—हर व्यक्ति के बाहर की आंख भी जागृत रहे और भीतर की आंख भी जागे।

### अतीन्द्रिय चेतना का प्रश्न

दर्शनशास्त्र बहुत प्रचलित रहा है। दर्शन विद्या की एक पूरी शाखा बन गया। प्रायः प्रत्येक विश्वविद्यालय में दर्शन की एक शाखा मिलेगी। दर्शन का अर्थ है देखना। दर्शन पढ़ने वाला विद्यार्थी कभी आंख से नहीं देखता। ऐसे भी लोग हुए हैं, जिनके पास आंख नहीं थी किन्तु वे दर्शन के जाने-माने विद्वान् थे। प्रेक्षा भीतर की आंख है। भीतर की आंख से देखना प्रेक्षा है। जो व्यक्ति भीतर की आंख से देखने का प्रयत्न करता है, वह बहुत कुछ देख लेता है। जो केवल बाहरी आंखों से काम लेता है, वह बहुत सीमित हो जाता है। अपेक्षा है—हमारी अतीन्द्रिय चेतना जागे। वही नहीं जागती है तो देखना अधूरा रह जाता है। यह एक सच्चाई है। हम इसे उलटकर देखें। क्या कोई ऐसा प्राणी है, जिसके पास अतीन्द्रिय चेतना नहीं है? मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षियों में भी अतीन्द्रिय चेतना रहती है। उनमें मनुष्य से ज्यादा अतीन्द्रिय चेतना रहती है। प्रश्न हुआ—पशु-पक्षियों में अतीन्द्रिय चेतना अधिक क्यों होती है? इस प्रश्न पर आज के विचारकों और विद्वानों ने चिन्तन के पश्चात् कहा—मनुष्य ने इन्द्रिय चेतना से काम लेना शुरू किया और अतीन्द्रिय चेतना को भुला दिया। पशु-पक्षी आज भी अतीन्द्रिय चेतना से काम लेते हैं। उन्हें दूर-दूर की बात का पता चलता है। भयंकर तूफान, भूकंप आने वाला है, मनुष्य को पता नहीं चलता किन्तु पशु-पक्षियों को पता चल जाता है। उनकी अतीन्द्रिय चेतना आज भी काम कर रही है। वे तरंगों के सहारे दूर की स्थिति को जान लेते हैं। मनुष्य समाज इन्द्रिय चेतना में इतना डूब गया है, इन्द्रियों पर इतना भरोसा करने लग गया है कि वह इनसे दूर जाना ही नहीं चाहता।

### प्रेक्षा और इन्द्रिय संयम

जो व्यक्ति प्रेक्षा का प्रयोग शुरू करता है उसे सबसे पहले इन्द्रिय-संयम करना होता है। इन्द्रिय-संयम का अर्थ है—प्रति-संलीनता। इसका तात्पर्य है—कान से

काम मत लो, आंख से काम मत लो, इन्द्रियों से काम मत लो। भगवान महावीर ने ध्यान के अनेक प्रयोग किए। कहा गया—सदरूवेसु अमुच्छिण्ण ज्ञाति—महावीर शब्द और रूप के प्रति अमूर्च्छित होकर ध्यान करते। इसका अर्थ है—सुनो, पर कान से मत सुनो। देखो, पर आंख से मत देखो। भीतर की आवाज सुनो, भीतर की आंख से देखो। बाहर की आंख को बंद कर लेना, बाहर के कान को बंद कर लेना, भीतर की आंख और कान को खोल देना, यह है प्रतिसंलीनता का रूप। प्रतिसंलीनता का अर्थ है—अपने आप में लीन हो जाना। जब जयाचार्य लम्बे समय तक ध्यान करते तब वे कानों में ऐसी चीज डाल लेते, जिससे बाहर की आवाज सुनाई न दे। अनेक बड़े-बड़े साधकों ने यह प्रयोग किया है। जो व्यक्ति बाहर की आवाज को सुनना बन्द कर देता है, भीतर की आवाज को सुनना शुरू कर देता है, उसके भीतर से आवाज फूट पड़ती है। हम जितने बाहर से भीतर की ओर जाएंगे, भीतर की आंख और कान खुल जाएंगे। हम जितने बाहर रहेंगे, भीतर के कान और आंख बंद होते चले जाएंगे।

### अनिमेषप्रेक्षा

महावीर की ध्यान-पद्धति बहुत विचित्र थी। वह तीन भागों में बंटी हुई थी। महावीर ऊर्ध्वलोक का ध्यान करते, तिर्यग्लोक का ध्यान करते, अधोलोक का ध्यान करते। ऊर्ध्वलोक ध्यान का एक रूप है—आकाश दर्शन। जब महावीर तिर्यग् स्थान पर दृष्टि टिका देते। वे खुली आंखों से ध्यान करते, लम्बे समय तक ध्यान करते। वह ध्यान का रूप था अनिमेषप्रेक्षा। वे निर्धारित भाग को खुली आंखों से देखते रहते, खुली आंखों से देखते-देखते उनकी आंखों में एक बल पैदा हो जाता। उस स्थिति में उन्हें देखकर बच्चे चिल्ला उठते। एक बालक ने देखा—कैसी आंखें हैं! बड़ी विचित्र आंखें हैं! वह दूसरे बालक से कहता—देखो! कैसा व्यक्ति है, कैसी आंखें हैं, आंखों में कितनी लालिमा है। बच्चे महावीर को देखकर डर जाते। अनिमेषप्रेक्षा करते-करते उनकी ऐसी स्थिति बन जाती।

अनिमेषप्रेक्षा ध्यान-साधना का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। जाति-स्मृति, सम्मोहन, दूर-दृष्टि, अन्तर्दृष्टि—इन सबके लिए अनिमेषप्रेक्षा एक अनिवार्य प्रयोग है। इस प्रयोग के द्वारा गहरी एकाग्रता सधती है। जिन ध्यान पद्धतियों में केवल त्राटक के प्रयोग को ही प्रधानता दी गई है, उनमें मुख्यतः यही प्रयोग चलता है। वास्तव में यह एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। भगवान महावीर बहुत लम्बे समय तक अनिमेषप्रेक्षा

का प्रयोग करते। उनके प्रयोग का तीसरा बिन्दु था—नीचे लोक की प्रेक्षा।

### वासना विजय का प्रयोग

आकाश प्रेक्षा, तिर्यग् लोक प्रेक्षा और अधोलोक प्रेक्षा—ये तीन प्रयोग महावीर की साधना-पद्धति के मुख्य अंग थे? प्रश्न होता है—महावीर इन प्रयोगों को क्यों करते थे? कारण क्या था? इसका एक कारण बतलाया जाता है—ऊपर के तत्त्वों को जानने के लिए ऊर्ध्व दिशा में ध्यान किया जाता है। तिर्यग् लोक के तत्त्वों को जानने के लिए तिर्यग् दिशा में ध्यान किया जाता है। अधोलोक—भूगर्भ के तत्त्वों को जानने के लिए नीचे लोक में ध्यान किया जाता है। यह एक कारण है। इसका दूसरा कारण है—प्राण और अपान का संतुलन। अपान पर विजय पाने के लिए, प्राण और अपान का संतुलन स्थापित करने के लिए, ऊर्ध्व दिशा में ध्यान करना जरूरी है। यह वासना-विजय का महत्वपूर्ण प्रयोग है।

### वृत्ति नियंत्रण का सूत्र

महावीर खड़े-खड़े ध्यान कर रहे थे। कुछ रमणियां आईं। वे महावीर के रूप और तेज को देखकर विमुग्ध हो गईं। एक ने कहा—तुम राजकुमार जैसे लगते हो। तुम कौन हो? तुम्हारी पत्नी कौन है? क्या वह क्षत्रियाणी है, ब्राह्मणी है या वैश्य है? महावीर मौन रहे। दूसरी ने कहा—कैसा आदमी है? हम पूछ रहे हैं और यह जबाब ही नहीं दे रहा है। तीसरी ने कहा—सुन्दर कुमार! आंख खोलकर सामने तो देखो। एक रमणी बोली—लगता है कोई नपुंसक है। महावीर न बोले और न आंखें खोलीं। उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ।

इस घटना का निष्कर्ष निकाला गया। महावीर की आंख ऊपर की ओर लगी हुई थी। उन्होंने ऊर्ध्व ध्यान के द्वारा अपान पर प्राण का नियंत्रण स्थापित कर लिया था इसलिए वे वासना से विरत बन गए। उन्होंने वासना को जीत लिया इसलिए कभी विचलित होने का प्रसंग ही नहीं बना। यह वृत्तियों को नियंत्रित करने का प्रयोग है। जब तक अपान पर प्राण का नियंत्रण नहीं होता तब तक वृत्ति नियंत्रण का सूत्र हस्तगत नहीं होता।

### दो प्रकार के आलंबन

हमारे शरीर के तीन भाग हैं—ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक। लोक का एक अर्थ है शरीर। प्राचीन जैन और बौद्ध साहित्य में शरीर के अर्थ में लोक

शब्द का बहुत प्रयोग हुआ है। शरीर में जितने चक्र—चैतन्य-केन्द्र माने गए हैं, उन्हें तीन भागों में बांटा गया है। सबसे महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र ऊर्ध्वलोक में है। आनन्द केन्द्र, विशुद्ध केन्द्र, ज्योति केन्द्र, शांति केन्द्र आदि ऊर्ध्वलोक में हैं। तैजस केन्द्र मध्यलोक में है। स्वास्थ्य केन्द्र और शक्ति केन्द्र अधोलोक में हैं। हमारे शरीर में और भी बहुत से केन्द्र हैं। सारा शरीर चैतन्य केन्द्रों से भरा हुआ है। भगवान् महावीर ने इन केन्द्रों पर बहुत ध्यान किया। वे पुद्गल पर दृष्टि टिका देते, चाहे वह शरीर का हिस्सा हो या बाहरी पुद्गल।

ध्यान के लिए शरीर और बाहरी पुद्गल—दोनों का आलंबन लिया जा सकता है। बाहर का आलंबन या शरीर का आलंबन—इन दोनों में से किसी एक आलंबन पर महावीर लंबे समय तक अनिमेषप्रेक्षा का प्रयोग करते। सामने कोई मकान है, उस पर ध्यान टिका देना बाहरी आलंबन है। बाहर के पदार्थों को जानने के लिए ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक—इन तीनों पर ध्यान किया जाता है। भीतर को जानने के लिए, अपने पर विजय पाने के लिए शरीर के ऊर्ध्व, अधः और तिर्यग् भाग पर ध्यान किया जाता है। दोनों प्रकार की ध्यान की प्रक्रिया आचारांग-सूत्र से फलित होती है। आचारांग में ध्यान के महत्त्वपूर्ण सूत्र भरे हुए हैं। उनको पकड़ने वाला ध्यान के रहस्यों को पा लेता है।

### ध्यान सहज वृत्ति है

भगवान् महावीर की साधना ज्ञाता-द्रष्टा की साधना थी। केवल ज्ञाता-द्रष्टा होना ध्यान है। जब देखने-जानने के साथ संवेदन जुड़ जाता है, तब ध्यान अध्यान बन जाता है। ज्ञान और दर्शन अलग है, संवेदन अलग है। संवेदन का सम्बन्ध वेदनीय कर्म से है। प्रेक्षा का मतलब है ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम, दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम। इनका प्रयोग करना ही प्रेक्षा है। भगवान् महावीर ने ज्ञाता-द्रष्टा भाव का जो दर्शन दिया, वह ध्यान की बहुत सीधी और प्रभावी पद्धति है।

ध्यान एक अप्रयत्न है। कहा गया—उत्तमा सहजा-वृत्ति—सहज वृत्ति उत्तम होती है। ध्यान सहज वृत्ति है। जानने में कुछ करना नहीं पड़ता। क्रिया अन्तराय कर्म से संबंध रखने वाली वृत्ति है। जानने में कुछ करना नहीं होता, वह अक्रिया है। महावीर केवल जानने और देखने में निरत रहते थे। इसलिए वे अकषायी थे। अकषायी होना बहुत बड़ी बात है। लौकिक भाषा में अकषायी का अर्थ कुछ दूसरा होता है। अकषायी का अर्थ है कषाय-मुक्त होना। हम गहराई में जाएं तो यही ध्यान की परिभाषा है, यही अहिंसा की परिभाषा है। वीतराग होना, ध्यानी होना या अहिंसक

होना—इनमें भिन्नता नहीं है। तात्पर्यार्थ में ये सारे एक बिन्दु पर सिमट जाते हैं। यदि एक व्यक्ति शुद्ध दृष्टि से अहिंसक रहता है तो वह ध्यान में है। यदि वह ध्यान में नहीं है तो वह अहिंसक नहीं हो सकता। यदि अहिंसक है तो वह ध्यान बिना रह नहीं सकता। बहुत सारे लोग ध्यान करने के लिए नहीं बैठते किन्तु उनकी आत्मा और चेतना निर्मल होती है, अपनी वृत्तियों पर उनका नियंत्रण होता है। मानना चाहिए—वे सहज ध्यान की मुद्रा में रहते हैं।

### आचार्य भिक्षु सहज ध्यानी थे

हम आचार्य भिक्षु के जीवन को देखें। वे अंतिम समय में ध्यान-मुद्रा में दिवंगत हुए, ऐसा उल्लेख मिलता है किन्तु वे कभी अलग से ध्यान करते थे, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। ऐसा लगता है—अहिंसा की बात उनकी आत्मा में इतनी बैठी हुई थी कि वे निरन्तर सहज ध्यान की स्थिति में रहते थे। इसीलिए प्राणिमात्र के प्रति उनके मन में गहरी संवेदना और करुणा थी। आचार्य भिक्षु का यह सिद्धांत—रांका नै मार धींगा ने पोखै—ध्यान का फलित है। सूक्ष्मजीवों के प्रति, प्राणिमात्र के प्रति करुणा का प्रवाह नहीं होता तो यह सिद्धांत कभी फलित नहीं होता। कबीर के पुत्र कमाल ने कहा था—‘जैसी प्राणधारा मुझमें प्रवाहित हो रही है वैसी ही प्राणधारा घास में प्रवाहित हो रही है इसलिए कमाल अब घास नहीं काट सकता।’ जिस व्यक्ति को इतनी गहरी दृष्टि प्राप्त हो जाती है, प्राणिमात्र के प्रति करुणा और अहिंसा का भाव सध जाता है, उसे ध्यान में बैठने की जरूरत नहीं होती। वह निरन्तर ध्यान की स्थिति में चला जाता है। प्रत्येक व्यक्ति सहज ही इस स्थिति को नहीं पा सकता। उसे अभ्यास करना होता है। करुणा और अहिंसा को जगाने के लिए प्रारम्भ में अभ्यास करना जरूरी है। हम अभ्यास करें, करुणा की वृत्ति को जगाएं। जिसमें करुणा या अहिंसा जाग गई, उसका ध्यान सिद्ध हो गया।

### ध्यान का सबसे बड़ा सूत्र

भगवान् महावीर ने प्रेक्षा की, केवल देखा और जाना। इसका अर्थ है—ज्ञान और दर्शन के साथ संवेदन जुड़ा हुआ नहीं था।

शिष्य ने आचार्य से पूछा—गुरुदेव ! ध्यान क्या है ? आचार्य ने कहा—वत्स ! केवल सुनो। शिष्य ने पुनः प्रश्न किया—आपके कथन का अर्थ क्या है ? आचार्य बोले—तुम काम से काम लो, सुनो किन्तु उसके साथ और कुछ मत जोड़ो। तुम ध्यान की स्थिति में चले जाओगे।

जहां जहां कान के साथ मन जुड़ा, संवेदना जुड़ी, सुनना केवल सुनना नहीं रहा। उसमें संवेदन मुख्य बन जाता है, मूर्च्छा प्रधान हो जाती है और सुनना गौण हो जाता है। जहां केवल इन्द्रियों से काम लिया जाता है, उसके साथ मन और संवेदन नहीं जुड़ता वहां सुनना मुख्य हो जाता है, संवेदन और मूर्च्छा गौण बन जाते हैं। यही ध्यान का सबसे बड़ा सूत्र है। भगवान् महावीर की ध्यान पद्धति का, प्रेक्षाध्यान का इस संदर्भ में ही सम्यक् मूल्यांकन और अवबोध प्राप्त हो सकता है। भगवान् महावीर ने जो प्रयोग किए, वे जिन प्रयोगों से गुजरे, उनकी साधना के जो आधार सूत्र थे, वे आज प्रेक्षाध्यान पद्धति के महत्वपूर्ण आधार बने हुए हैं। उसकी साधना करने वाला महावीर की ध्यान पद्धति का साक्षात्कार कर सकता है।









## तोड़ो मत : जोड़ते रहो

एक व्यक्ति ने पूछा-भगवान् की शक्ति ज्यादा है या शैतान की।

मैंने उत्तर दिया - भगवान् की शक्ति ज्यादा है।

नहीं, यह गलत बात है। भगवान् की शक्ति दिखाई नहीं देती, शैतान की शक्ति हमारे सामने है। वह जब चाहे बिगाड़ सकता है। शैतान दुनिया में भरे पड़े है, पग-पग पर हैं। पर भगवान् कहीं दिखाई नहीं देता।

तुम्हारा तर्क भी ठीक है, मेरा तर्क भी ठीक है।

कैसे?

बानाने में समय ज्यादा लगता है, बिगाड़ने में कुछ भी समय नहीं लगता।

बुद्ध से एक व्यक्ति ने उपदेश देने की प्रार्थना की। उपदेश मांगने वाला व्यक्ति चोर था, डाकू था, बुरा आचरण करने वाला था। बुद्ध ने कहा-उपदेश बाद में दूंगा। पहले तुम सामने वाले पेड़ से पांच पत्तियां तोड़ लाओ। वह गया, पांच पत्तियां तोड़कर ले आया। उसे तोड़ने में एम मिनट भी नहीं लगा। बुद्ध ने कहा-इन पांच पत्तियों को फिर जोड़ आओ। वह बोला-यह काम संभव नहीं है। तोड़ना मेरे वश की बात थी पर जोड़ना मेरे वश की बात नहीं है। मैं तोड़ सकता हूं जोड़ नहीं सकता। बुद्ध ने कहा-सही संबोधि है। तोड़ो मत, जोड़ने में लगे रहो।

— आचार्य महाप्रज्ञ

